|| श्रीकृष्णाय नमः ||

|| श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ||

|| श्रीमदाचार्यचरण कमलेभ्यो नमः ||

तत्वदीप निबन्धः

|| नमो भगवतेतस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे ||

तत्वदीपप्रकाशः

श्रीकृष्णाय नमः || अथ निबन्धो लिख्यते || सर्वोद्धारप्रयत्नात्मा कृष्णः प्रादुर्बभूव ह || तथात्वं येन संसिद्ध्येत्तदर्थं व्यास उक्तवान् ||१|| श्रीभागवतमत्यन्तं सर्वेषां सुखदायकम् || तस्यापि तत्वं येनैवसिध्येदिति विचार्य हि ||२|| अग्निश्चकार तत्वार्थदीपं भागवते महत् || तच्चापि येन संसिध्येद्व्याख्यानं तन्निरूप्यते ||३||

श्रीभागवततत्वार्थं प्रकटीकरिष्यन्प्रथमं शास्त्रार्थोपनिबन्धन-लक्षणंमंगलमाचरति || नम इति ||

भगवति जीवैः नमनमेव कर्तव्यं नाधिकं शक्यमिति सिद्धान्तः|| किमासनं ते गरुडासनाय किं भूषणं कौस्तुभभूषणाय || लक्ष्मीकलत्राय किमस्ति देयं वागीश किन्ते किं ते वचनीयमस्ति || इत्यादिवाक्यैः परमकाष्ठापन्नं वस्तु नमस्यत्वेन निर्दिशति || भगवत इतिपुरुषोत्तमायेत्यर्थः || तत्सिद्धये लोकवेदप्रसिद्धिमाह || तस्माइति|| मतभेदेन तस्यान्यथा-कल्पनव्यावृत्यर्थमाह || कृष्णायेति || स एव परमकाष्ठापन्नः || कदाचित् जगदुद्धारार्थम् अखण्डः पूर्णएव प्रादुर्भूतः कृष्ण इत्युच्यते ||

ननु पूर्वं साधनानि सिद्धान्येव सर्वत्र तत्रानधिकारेण साधनाभावे

भगवानपि अवतीर्य किं करिष्यतीत्याशंकायामाह ॥ अद्भुतकर्मण इति ॥ भगवतोद्भुत कर्मत्वमग्रे व्युत्पाद्यम् ॥ असाधनं साधनं करोतीत्यादि ॥

एवं साक्षाद्भगवत्वे हेतुमुक्त्वा तस्य लीलामाह ॥

व्रजभाषा टीका

श्रीहरये नमः ॥ श्रीमदाचार्यचरणकमलाभ्यां नमः ॥ श्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणाभ्यां नमः ॥ श्रीमद् गुरुभ्यो नमः ॥ दैवोद्धारार्थमेवाविर्भूताय सततं नमः ॥ श्रीवल्लभाय कृष्णाय परमानंद-मूर्त्तये ॥ श्री वल्लभविठ्ठलहि गिरधर गोविंदसाथ ॥ रघुनाथहिं यदुनाथजू घनश्याम अभिराम ॥ मनसा वचसा कर्मणा निसदिन करूँ प्रणाम ॥ परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्णचंद्रनें सबनके उद्धार करवेकूँ अपनो निजस्वरूप प्रकट कियो और आगे होयवेवारे जीवनकौ उद्धार करवेकूँ महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायनजीके मुखद्वारा श्रीभागवतस्वरूपसों आप प्रगट भये। सो श्रीभागवतस्वरूप सब जीवनकूँ अत्यंत सुखदायक है परंतु श्रीमद्भागवतको अर्थ ठीक-ठीक अर्थ कलिकालसों मलिनबुद्धिवारे जीव नहीं जानसकें हैं यह विचारकें ठीक-ठीक अर्थ जानवेके लिये श्रीकृष्णके मुखाग्निरूप श्रीवल्लभाचार्यजी ने तत्वार्थदीपनामको ग्रंथ रच्यो और वाकूँभी स्पष्ट करिवेकूँ 'प्रकाश' नामसों प्रसिद्ध व्याख्यानभी आपनेंही बनायो वा व्याख्यानकूँभी स्पष्ट करिवेके लिये आचार्य-कुलभूषण श्रीपुरुषोत्तमजी महाराजनें आवरण-भंगनामसों प्रसिद्ध

व्याख्यान बनायो। साधारण भाषा जानवेवारे बालकनकूँ सुगम रीतिसों समुझायवेके लिये अन्वयक्रमकूं छोडकरके निबन्ध आवरणभंग के तात्पर्यको संक्षेपसों या भाषाग्रन्थमें वर्णन कियो है।

श्रीवल्लभाचार्यजी ग्रंथके प्रारंभमें मंगलाचरण करें हैं और या मंगलाचरणहीमें संक्षेपसों वेद, गीता, व्यास सूत्र श्रीभागवतको सिद्धान्तभी वर्णन करें हैं। "नमो भगवते" इति। भगवाननें जीवनकूँ सर्वपुरुषार्थ दिये हैं ताके प्रत्युपकारमें जीवनके आडीसूं भगवान्के अर्थ नमस्कारही होय सकें हैं या सों सिवाय भगवान् को प्रत्युपकार कछूभी जीव नाहीं कर सकें हैं यह शास्त्रको सिद्धांत है। शास्त्रमें लिख्यो हैं "जिनके गरुडजी आसन बैठवेकूँ है, कौस्तुभमणि भूषण अलंकार जिनकें हैं, लक्ष्मीजी जिनके स्त्री हैं और जो स्वयं वाणीके पति हैं तिनको आसन, आभूषण, धन, स्तुति आदि द्वारा जीव कहा सत्कार करेगो" या तरह के बहुतसे वाक्य हैं। तासों जीवनकूं नमस्कार करवे योग्य सबसों बडेसों बडे देव पुरुषोत्तमही हैं पुरुषोत्तम वही है जो वेदमें और लोकमें प्रसिद्ध होय अनेक वादीजननें अपने २ मतमें पुरुषोत्तम कछु ओरही मान राख्यो है परन्तु खुलासा यथार्थ विचार कियो जाय तो कृष्णही पुरुषोत्तम हैं, सबसों बडेसोंभी बडो परब्रह्म जाकूं कहेहैं वहही जगत्को उद्धार करवेकों अखंड पूर्णरूपसों जितनो हैं उतनोही समग्र

प्रकट भयो तब 'कृष्ण' कहायो। यहां 'कृष्ण' यह शब्द परब्रह्मको वाचक हैं "परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते" यह वेदको वाक्य है तथा श्रीकृष्णने गीताजीमें आज्ञा करी है "यस्मात् क्षरमतीतोहम-क्षरादपि चोत्तमः ॥ अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥"

अर्थ- हे अर्जुन, क्षर ब्रह्म जो सम्पूर्ण भूत और अक्षरब्रह्म जाकी ज्ञानी उपासना करें हैं इन दोनोंसों मैं उत्तमहूं और लोक वेदमें पुरुषोत्तम नामसों प्रसिद्ध हूं तथा भागवतमें "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ॥ अजोपि जातो भगवान् यथाग्निः"॥ या श्लोकमें लिखे हैं। जैसें राजा अपनें पुत्रनमें लड़ाई देखें है तब स्वयं आपके क्रूर स्वभाववाले पुत्रनकूं दूर करकें शान्त स्वभाव वाले भोले भाले पुत्रनकूं अपने समीप राखे हैं ऐसेंही दैव जीव हें सो भगवानके शान्तरूप हैं आसुर जीव हैं सो भगवानके अशान्तरूप हैं। जब अशान्त आसुर जीव शान्त स्वभाववाले सूधे दैव जीवनकूं अत्यन्त दुःख देवे लगें हैं तब पुरुषोत्तम अत्यन्त करुणा करिकें स्वयं पूर्ण अखंड रूपसोंहीं बितने देशकी माया दूर करकें प्रकट होय है जैसें काष्ठके घिसवेसों बिना अग्नि लाये काष्ठमें सोंही अग्नि पैदा होजाय है। तासों केवल धर्म रक्षाकेही लिये पुरुषोत्तम अवतार नहीं है क्योंकि धर्म रक्षा तो अंशावतारद्वारा भी कर सकें हैं। परन्तु जब सूर्य उदय होवै है तब दीपककी जरूरत नाहीं रहत है क्योंकि दियाकेकामकूं

सूर्यही करि देत हैं याही रीति सों जब कृष्ण परब्रह्म प्रकट भये तब अंशावतारकेभी कार्य आप द्वारा ही हो गये। तासों कितनेक मनुष्यनकूं अंशके कार्य देखकें कृष्णमें अंशावतारको धोखा होजावे है। सो यह मोह इंद्रादिकनकों भी होजातहै तब भगवान्‌ने गोवर्द्धन धारणादि लीलाकरकें उनको अज्ञान दूर कर्योहतो। और तो कहाँ वसुदेवजीभी एक समयमें नारदादिक ऋषिन सों अपने कल्याण होयवेको उपाय पूछवे लगे हते तब नारदजीनें कही-हे वसुदेवजी ! हम सब ऋषि लोग अपनो कल्याण होयवे के लिये कृष्णके दर्शन करिवेकों आवे हैं वे पूर्ण ब्रह्म कृष्ण तुमारे पुत्र भावकूं प्राप्त होयकें सर्वदा समीप रहें हैं। तुमारो सदा कल्याणही हो रह्यो है इत्यादि। तथा गीतामें श्रीकृष्णनेंही स्वयं आज्ञा करी है "अवजानंति मां मूढामानुषींतनुमाश्रितम्"। अर्थात् अज्ञानी मनुष्य मेरे सदानंद मूर्तिरूप परम भावकों नाहीं जानें हैं तासों मोकूं वे अज्ञानी लोग और मनुष्यनके शरीरनकी तरह मेरे शरीरकूंभी रुधिर मांसादिकन-को बन्यो जानें हैं। इत्यादि शतशः वाक्यन सों श्रीकृष्णको स्वरूप आनंद रूपही है और आपके गुण कर्म स्वभावभी आनन्द रूप ही हैं। जैसे दियाको प्रकाश दियासों अलग नाहीं होवे है ऐसे गुण कर्म स्वभावभी भगवानसों न्यारे नहीं है। कहीं कहीं अंशावतारमें 'कृष्ण' शब्दको प्रयोग आवे है तहां गौण समुझनों। मुख्य 'कृष्ण' नाम उनकोही है जो स्वयं कृपा

करिकें जगत्को विना साधन उद्धार करिवें के लिये आप्त काम अखंड पूर्ण परब्रह्म अग्निकी तरह माया दूर करकें अपनो रूप दिखावें हैं। यद्यपि अंश- कलावतार भी उद्धार करें हैं परन्तु धर्मादि साधन बतायकें उनके द्वारा उद्धार करें हैं। क्योंकि गीतामें लिखे हैं - "धर्म संस्थापनार्थाय संभवामियुगेयुगे" यामें युगावतार को धर्म स्थापन मात्र प्रयोजन लिख्यो है। पूर्ण ब्रह्मश्रीकृष्णचन्द्र तो अद्भुत कर्म वाले हैं काम क्रोधादिक जे मोक्षके साधन नाहीं है उनकूंभी साधन बनायकें अपनें अलौकिक सामर्थ्य करिकें गोप, गोपी, कंस, गो, मृग, पशु, पक्षी आदिको उद्धार कियो। जो श्रीकृष्ण परब्रह्म नाहीं होते तो विना साधन ज्ञानरहित जीवनको उद्धार नाहीं करि सकते। यद्यपि कितने कर्मकुंही ईश्वर मानें हैं कितनेक ईश्वरकों नाहीं माने हैं। वे लोग कहें हैः पदार्थन्के स्वभावसोंही जगत्को उत्पत्ति-नाश होतो जावै है। उनके मतमें स्वभावही गुप्त रीतिसों ईश्वर भयो। और तो कहा कारू लोगभी विश्वकर्माकोंही ईश्वर मानत हैं। और सबही अपनें-अपनें ईश्वरकों नित्य-शुद्ध-बुद्ध-स्वरूपही मानें हैं यह बात कुसुमाञ्जलि विवेकमें उदयना-चार्यनें भी लिखी है परन्तु ये ईश्वरके एक एक देश के मानवे वारें हैं। जैसे बहुत आँधे पुरुष हाथीके पास जावें हैं कोईके हाथमें हाथी की सूँड आवे हैं वह बाही घाटको हाथीकूँ जानें हैं जाके हाथमें पाँव आवें हैं वह हाथीको मोटो थंभा जैसों जानें हैं जाके हाथमें पूँछ आवे हैं वह लंबो डंडा

जैसो जाने हैं या रीतसों एक एक अंगकों हाथीमान बैठें है। **समग्र** हाथीको नाहीं जाने हैं। याही प्रकार परमात्माके एक-एक देश को यथाशक्ति ऋषि आदिक वर्णन करें हैं।

रूपनामविभेदेन जगत्क्रीडति यो यतः ॥१॥

तत्वदीपप्रकाशः

रूपेति॥ रूपनामविभेदेन यः क्रीडति॥ रूपनामविभेदेन यो जगत्॥ रूपनामविभेदेन यतो जगदिति ॥ अनेन क्रीडायां स्वातंत्र्यमुक्तम्। निर्लेपत्वायाह । एतादृशं जगद्यत इति । एवं ज्ञानेनमुच्यन्त इति संक्षेपः॥१॥

विस्तरेणवक्तुं प्रतमतोधि-कारिणमाह ॥

व्रजभाषाटीका

वेदमें सृष्टि करनो ब्रह्मको लक्षण लिखो है ताको वर्णन करे हैं 'नाम रूपेति' रूप नामके भेद करकें जो क्रीडा करें है। रूप नामके भेद करिके जो जगत् बन जावें हैं रूप नामके भेद करिकें जासों जगत् प्रकट होवेंहै अर्थात् जगत्में जितने पदार्थ हैं उन सबनको रूप बनायकें और उनके नाम भी बनायकें रूप और नामके भेदसों श्रीकृष्णही क्रीडा कर रहे हैं। पदार्थ स्वरूप और शब्द स्वरूप दो तरहको जगत् है सो भी आपही भये हैं अर्थात् कार्य भी आपही हैं । और मृत्तिकासों जैसें घटबनें है ऐसें नाम और अर्थ रूप करकें आपसों जगत् बन्यो है । जगत्के उपादान कारण भी आपही हैं। अपनें स्वरूपके सिवाय और कोई पदार्थकी क्रीडामें

अपेक्षा नाहीं है अर्थात् क्रीडाके पदार्थ और क्रीडा करिवे वारे आपही स्वयं हैं याही सों आप अपनी क्रीडामें परम स्वतंत्र हैं। आप श्रीभगवान्के सिवाय कोई पदार्थ नाहीं है, जामें आप आसक्त होंय यासों आप निर्लेप हैं या रीतिके ज्ञानसों मोक्ष होवै है। यही सर्वशास्त्रन्को निचोड है। श्रीवल्लभाचार्य जी ग्रंथ के आदिमें ऐसी लीला करने वाले श्रीकृष्णचंद्र कों नमस्कार करे हैं ॥१॥

सात्विका भगवद्भक्ता ये मुक्तावधिकारिणः ॥
भवान्तसंभवा दैवास्तेषामर्थे निरूप्यते ॥२॥

तत्वदीप प्रकाशः

सात्विका इति। स्वभाव प्रकृत्यपेक्षया अधिकं विहितम् अलौकिकं ये कुर्वंति ते सात्विकाः तत्रापि भगवत्सेवकाः। सेवापरास्तत्रापि ये निष्कामास्तएव मुक्तावधिकारिणस्तत्रा-पीश्वरेच्छयाऽन्तिम जन्मनि जाताः शरीरं गृहीतवंतस्तेषां यथांति मत्वं सिध्यति तथोपायो निरूप्यत इत्यर्थः ॥२॥

व्रजभाषा टीका

मुक्तिके अधिकारी जीवको स्वरूप कहें हैं। जे जीव अपने स्वभाव और आचरणसोंभी अधिक शास्त्रोक्त अलौकिक कार्यकूं करते रहैं तथा भगवत्सेवामें परायण रहैं कोई कामना नाहिं राखें भगवान्की इच्छा करके अन्तिम जन्म जिनको प्राप्त होय, अर्थात् जिन जीवनकूं भगवान् आगे जन्म नाहीं दियो चाहें ऐसे जीव मुक्तिके अधिकारी

हैं। श्रीवल्लभाचार्यजी या ग्रन्थमें ऐसो उपाय वर्णन करें हैं जाके करबेसों फिर जीवको जन्म न होय। तात्पर्य यह है आछी रीतिसों कह्योभयोभी सिद्धान्त अधिकारीके हृदयमें स्थिर नाहिं होवे है। याहीसों व्याससूत्रनमें तथा भागवतादिकनमें अधिकारी के लक्षण वर्णन करे हैं तथा गीताजी में "इदं ते नातपस्काय" इत्यादि श्लोकनमें अनधिकारीकूं ज्ञान देवेको निषेध लिख्यो है तैसें यहांभी सात्विक अधिकारीनको अभिमत लक्षण वर्णन करेहैं. देवतानकौ यजन-पूजन करनो सात्विक जीवनको स्वभावकार्य है। वाकी अपेक्षाभी अधिक अच्छे कार्यकूं करें। अर्थात् करे कर्मनकूं भगवानके अर्पण करते रहैं तथा जहां सत्पुरुष इकट्ठे होयकें भगवानके पराक्रमकूं जतायवेवारी तथा हृदयकर्णनकूं रसदेबेवारीं भगवत्कथा वर्णन करते होंय वहां जायकें भगवत्कथाकूं सर्वदा सुनते भये प्रशंसा करते रहैं तथा द्रव्य देह करकें भगवत्सेवा करते रहैं, तथा जिनके हृदयमें कोई कामना नाहीं होय, कामना है सो अधिकारीको दोष है अर्थात् जा पुरुषमें बुद्धि, आयुष्य, दोषनको अभाव ये तीनों वस्तु होंय वाकूं अधिकारी समुझनो। इतने गुण होंय और भगवान की भी जा जीवके शीघ्र उद्धार करनेकी इच्छा होय केवल गुरुरूपी पार लगायबेवारे बिना जा जीवकी मनुष्यदेह रूपी नाव संसारसागर के पार नाहिं लागती होय ऐसे जीवकी भगवानमें

दृढ आसक्ति करकें शीघ्र उद्धार करवेके लिये श्रीआचार्यचरणननें यह ग्रन्थ प्रकट कियोहै ॥२॥

भगवच्छास्त्रमाज्ञाय विचार्य च पुनःपुनः ॥
यदुक्तं हरिणा पश्चात्संदेह विनिवृत्तये ॥३॥
एकं शास्त्रं देवकी पुत्रगीतम्
एको देवो देवकीपुत्रएव ॥
मन्त्रोऽप्येकस्तस्य नामानि यानि
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥४॥

तत्वदीपप्रकाशः

वक्ता स्वस्य तादृशज्ञानप्राप्तौ प्रकारमाह। भगवच्छास्त्रमाज्ञाय इति। अन्यथाऽनाप्तत्वं स्याद्भगवच्छास्त्रं भागवतं, गीता पञ्चरात्रञ्च इति। तस्य सर्वतो ज्ञानं। भगवत्कृपादिनेति शेषः। तथाप्यापाततः प्रतिपन्नं न प्रमाणमिति विचारमाह ॥ पुनःपुनःनिश्चयानन्तरमपि।

ननु शतशोऽपि विचारितं जीवबुद्ध्या अप्रमाणं कदाचिद्भवतीति तदर्थमाह। यदुक्तमिति। हरिणा सर्वदुःखहर्त्रा श्रीजगन्नाथेन पुरुषोत्तमस्थितेन मोहकसर्वशास्त्रोत्पत्यनतरं यन्निर्द्धारकवाक्यमुक्तं तदपि ज्ञात्वेति ॥३॥

तेहवाह। एकं शास्त्रमिति। अत्राख्यायिका पारम्पर्यादेवावगन्तव्या। देवकीपुत्रेण गीतं गीता। गीतायां भगवद्वाक्यान्येव शास्त्रमित्यर्थः। वेदानामपि तदुक्तप्रकारेणैवार्थनिर्णयः। उपास्यनिर्द्धारमाह। एको देवो इति मूलभूतोयमित्यर्थः। सर्वदा स्मरणार्थं साधनमाह। मन्त्रोऽप्येक इति। कर्तव्यमाह तस्येतिस्त्र। न मनुष्यत्वेन ज्ञातव्यं इति। देव इति। सेवैव कर्तव्या। शास्त्रमवगत्य मनोवाग्देहैः कृष्णः सेव्य इत्यर्थः ॥४॥

व्रजभाषाटीका

श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञा करें हैं: हमनें श्रीगीताजी, भागवत नारदपंचरात्र इनको अर्थ भगवत्कृपा करिकें आछी रीतिसु जान्यो फिर वारंवार विचार करिकें तात्पर्यको निश्चयभी कियो तदुपरांत मोहकशास्त्र देखवेसों भये जे जीवनको अनेकप्रकारके संदेह तिनके दूरि करवेके अर्थ श्रीजगन्नाथरायजीनें जो वचनामृत आज्ञा कियो वाके ऊपर दृढ विश्वास राखिके और दैवी जीवनकूं भी यह सिद्धान्त जतायवेके लिये या ग्रंथकों प्रकट करें हैं ॥३॥

श्रीजगन्नाथरायजीनें ज्यों "एकं शास्त्रं देवकी पुत्रगीतम्" इत्यादि श्लोक आज्ञा कियो है ताकी कथा या रीतिसों प्रसिद्ध है । मायावादी और ब्रह्मवादी दोनों उत्कलदेशके राजाकी सभामें विवाद करवेलगे, विवाद करते सात दिन होगये परन्तु कोइकोभी जय नाहीं भयो तब यह निश्चय भयो श्रीजगन्नाथरायजीके मंदिरमें प्रश्न लिखिकें पत्र धरदेनों चाहिये । तब वाही दिन सायंकालके समय चार प्रश्न एक पत्रमें लिखिकें सबनके समक्ष मंदिरमें पत्र धरिदियो, प्रातःकाल वा पत्रमें एक श्लोक लिख्यो निकस्यो । सो श्लोक "एक शास्त्रं देवकीपुत्र गीतम्" इत्यादि मूलमें लिख्यो है। ताको अर्थ- देवकी पुत्र श्रीकृष्णकी आज्ञा करी जो गीता है वोही एक शास्त्र है. देवकीपुत्र श्रीकृष्णही एक देव है । देवकीपुत्रके जितने नाम है वेही मंत्र हैं । देवकीपुत्र

श्रीकृष्णकी सेवा है वोही कर्म है। या श्लोकमें चारों प्रश्नको उत्तर लिख्यो आगयो, सभासदननें या उत्तरकूं मानिलियो परन्तु मायावादीने कही यह श्लोक तो तुमारो बनायो भयो है। तब तो राजाने वा दिन मायावादीकेही आगें वानें कही वा रीतिसों पत्र मंदिरमें धरकें वाके समक्ष कपाट बन्ध किये, प्रातःकाल मायावादी के ही आगें कपाट खोले, पत्र मायावादीके आगेंही लायकें बाँच्यो वामें यह श्लोक निकस्यो "यः पुमान् पितरं द्वेष्टि तं विद्यादन्यरेतसम्, यःपुमान् श्रीहरिं द्वेष्टि तं विद्या-दन्त्यरेतसम् ॥" अर्थ जो पुरुष पिताके साथ द्वेष करें है वाकूं ओरके वीर्यसों पैदा भयो जाननों, जो पुरुष श्रीहरिसों द्वेष करे हैं वाकूं नीचवर्णके वीर्यसों उत्पन्न भयो जाननों। श्लोक सुनतेही मायावादी तो लज्जित होगयो। राजाने मायावादीकी माताकूं बड़ो भय देके पूछी तब वानें कही म्लेच्छ धोबीसों मेरें गर्भ रहि गयो हतो। फिर राजानें वाकूं अपने देशमेंसों निकास दियो। यह इतिहास जगन्नाथपुरीमें अभी तक परंपरासों प्रसिद्ध चल्यो आवें है ॥४॥

इत्याकलय्य सततं शास्त्रार्थस्सर्वनिर्णयः ॥
श्रीभागवतरूपं च त्रयं वच्मि यथामति ॥५॥
वेदान्ते च स्मृतौ ब्रह्मलिङ्गं भागवते तथा ॥
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥६॥
त्रितये त्रितयं वाच्यं क्रमेणैव मयात्र हि ॥

तत्वदीप प्रकाशः

एवं स्वयं ज्ञात्वा लोकज्ञापनार्थं शास्त्रं कथयन् बुद्धिसौकर्यार्थं **प्रकरण**त्रयमाह। इत्याकलय्येति।

सततमिति। मध्ये विरोधिज्ञानाभावः। शास्त्रार्थो गीतार्थः। सर्वस्यापि **ज्ञानादे**र्निर्णयो द्वितीयः। असंभावनाविपरीतभावनानिवृत्यर्थं द्वितीयं **प्रकरणम्** शास्त्रार्थस्य संक्षेपरूपत्वात्तद्विस्तारार्थं भागवतरूपं तृतीयं प्रकरणं **यत्र भा**गवतं निरूप्यते। चकारान्मीमांसाद्वयभाष्यं प्रकीर्णानि भागवतटीका **च** गृहीता। त्रयमेतदुपदेशन्यायेन कथयामि ॥५॥ परिभाषामाह। वेदान्त इति ॥

निर्गलितवस्तु ज्ञापकं लिंगं ब्रह्मेत्यादि पदं तत्र तत्र सिद्धम् ॥६॥ **मया**पि परमकाष्ठापन्नवस्तुबोधार्थं तत्तत्प्रकरणे वक्तव्यमित्यर्थः ॥ अस्मिन् शास्त्रे परिभाषामुक्त्वा प्रमाणमाह ॥

व्रजभाषाटीका

समुझिवेमें सुगमता पड़े जाके लियें तीन प्रकरण राखे हैं। प्रथम शास्त्रार्थप्रकरण तामें श्रीगीताजीको अर्थ है, दूसरो सर्वनिर्णयप्रकरण है ताके विषें असंभावना विपरीतभावना दूरि करवेके लिये सब पदार्थनको निर्णय कियो है। तीसरो श्रीमद्भागवत-रूप प्रकरण है ; तासों श्रीभागवतका शास्त्रार्थ तथा स्कन्धार्थ तथा प्रकरणार्थ तथा अध्यायार्थको निरूपण है ॥५॥ ग्रन्थके आदिमें संकेत कहे हैं श्रीमत्परम-काष्ठापन्न परमेश्वरको वेदांतमें 'ब्रह्म' नाम प्रसिद्ध है। स्मृतिमें परमात्मा नाम है, श्रीभागवतमें 'भगवान्' नाम है या ग्रन्थ के तीनों प्रकरणमें क्रमसः ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान को निरूपण होयगो।

श्रीमहाप्रभुजी आज्ञा करें हैं हम भी याही रीतिसों शास्त्रार्थप्रकरणमें 'ब्रह्म' कहेंगे। सर्वनिर्णय-प्रकरणमें 'परमात्मा' कहेंगे, श्रीभागवत-रूप प्रकरणमें 'भगवान्' नामसों वर्णन करेंगे ॥६॥

वेदाः श्रीकृष्णवाक्यानि व्याससूत्राणि चैव हि ॥७॥
समाधिभाषा व्यासस्य प्रमाणं तच्चतुष्टयम् ॥

उत्तरं पूर्वसंदेहवारकं परिकीर्तितम् ॥८॥
अविरुद्धंतु यत्त्वस्य प्रमाणं तच्च नान्यथा ॥

तत्वदीपप्रकाशः

वेदा इति। शब्द एव प्रमाणम्। तत्राप्यलौकिकज्ञापकमेव तत्स्वतःसिद्धप्रमाणभावं प्रमाणं वेदाः सर्वएव कांडद्वयस्थिताः अर्थवादादिरूपा अपि स्मृतित्वेन कृष्णवाक्यानि वेदत्वेपि पृथगुक्तानि व्याससूत्राणि चकाराज्जैनमिनिसूत्राणि च। एवकारेण व्याससूत्राविरोधेनैव तदङ्गीकरणम्। हि युक्ताश्चायमर्थ उपजीव्यत्वात्।

व्यासस्य समाधिभाषा भागवतं तत्रापि यन्न लौकिकरीत्या वदति यथा "अथोषस्युपवृत्तायाम्" इत्यादिनापि परमतरीत्या "श्रुतं द्वैपायनमुखात" इत्यादि यावत्समाधौ स्वयमनुभूय निरूपितं सा समाधिभाषा। एतच्चतुष्टयमेकवाक्यतापन्नं प्रमाजनकमित्यर्थः ॥७॥

ननु चतुर्णां क्वोपयोग एकेनैव चरितार्थत्वाच्चेत्याशंक्याह ॥

उत्तरमिति! उत्तरोत्तरं पूर्वपूर्वस्य संदेहवारकं प्रकर्षेण कीर्तितम्। यथा "अपाणिपादो जवनो ग्रहीतेत्यत्र" किं प्राकृतपादादिरहितं ब्रह्म आहोस्वित्सामान्य-निषेध इति संदेहे "सर्वतः पाणिपादान्तम्" इत्यादि गीतावाक्यं निर्णायकम्। तथा गीतायां "नित्यः सर्वगतः

स्थाणुः । ममैवांशो जीवलोके'' इत्यादिषु संदेहे सूत्रैर्निर्णयः । ''उत्क्रांतिगत्या गतीनामपीत्यादिभिः ।'' तथा ''जन्माद्यस्य यति इति'' संदेहे ''अन्वय-व्यतिरेकत'' इति भागवतेन निर्णयः ॥८॥ एतदविरोधेनैव मन्वादीनां प्रमाणमाह अविरुद्धमिति । वेदादिना अविरुद्धमेव मन्वादिकं प्रमाणम् ।

क्वचित्संवादः क्वचिद्विरोध इत्युभयसंभवे त्वप्रमाणमेवेत्याह ॥

व्रजभाषाटीका

या भगवत्सिद्धान्तके दृढ करिवेवारे चारि प्रमाण हैं। चार वेदसंहिता ब्राह्मणसहित, १ श्रीगीताजीमें श्रीकृष्णके वचनामृत, २ श्रीवेदव्यासजीके रचित ब्रह्मसूत्र, ३ श्रीमद्भागवतमें व्यासजीनें समाधि चढ़ाय कें अनुभव करिकें जो वाणी कहीहै वह समाधिभाषा, ४ चतुर्थ प्रमाण है, इन चारों प्रमाणनूके मेलसों जो सिद्ध होय वाहीकों ठीक समुझनो। प्रत्यक्ष अनुमान ऐतिह्य और शब्द इन चारि प्रमाणनूमें शब्द प्रमाण है सो सबनसों बडो है। शब्दप्रमाणमेंभी अलौकिक पदार्थको जतायवेवारो ज्यो शब्द है सोही मुख्य प्रमाण है, ऐसो शब्द वेदही है तासों वेदही मुख्य प्रमाण है । लोकसु नाहीं जान्यो जावे ऐसो ज्यो धर्म वाकूं जतायवेवारो वेदही है। वेदोक्त ज्यो धर्म है तथा वेदोक्त ज्यों ब्रह्मको स्वरूप है वाकूं और प्रमाण नाहिं जताय सकें हैं। वेदके वाक्यमें कोई स्थानमें अयोग्यता ज्यो मालूम पडेहै सो जानवेवारेकी बुद्धिके दोषसों मालुम पडे है। जैसे वेदमें लिखो है ''ग्रावाणः प्लवन्ते'', अर्थ-पाषाण

तरतेहैं इत्यादि वाक्यकूंभी झूठे नाहिं मानने क्योंकि वेद हैं सो भूत भविष्यत् वर्तमानकालके जानवेवारे ईश्वरके वाक्य हैं। तासों आगें होयवेवारे वृत्तान्तकोभी वेदमें वर्णन कियो है, रामावतारके समयमें समुद्रमें सेतु बँध्यो तब पाषाणके तरवेको सबकों प्रत्यक्ष अनुभव भयो, याहीप्रकार वेदके और वाक्यन् कोंभी यथार्थही मानने। अपनी मलिन बुद्धिके अनुसार वेदके वाक्यन्को उलटो अर्थ नाहिं करनो या सिद्धान्तमें अर्थवादकोंभी प्रमाण मानें है गीताजीमें भी भगवान् के वाक्य हैं तासों वेदरूपही है । परंतु अर्जुनके अधिकारानुसार कहेगये हैं तासों स्मृतिरूप है। "स्मृतेश्च" या व्याससूत्रमें स्मृतिकी प्रमाणता लिखी है। विष्णुपुराणमें "वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणेषु न संशयः" । या वाक्यमें पुराणनमें सब वेद स्थितहै यह बात लिखी है तासों सब पुराणनमें श्रीभागवत प्रमाण है तामें भी समाधिभाषा परम प्रमाण है। श्रीभागवत है सोभी भगवद्वाक्य है तासों वेदरूपही है। परन्तु स्त्रीशूद्रादिकनको उद्धार करवेके लिये पुराणमें गणना कियो गयो है ॥७॥

चार प्रमाण मानवेको यह कारण है जो आगेंको प्रमाण पहिले प्रमाणके संदेह दूर करिवेवारो है, जैसे कि वेदको संदेह गीताजीसों दूर करनो, वेदमें लिखे हैं "अपाणिपादो जवनो गृहीता" अर्थः ब्रह्मके पांव नहिं हैं तौभी चलें है और हाथ नाहिं हैं तौभी ग्रहण करले हैं। या श्रुतिमें संदेह

होयहै कि ब्रह्मकें हाथ पांव सर्वथाही नाहीं है अथवा अलौकिक हाथपांव हैं? अर्थात् लोकमें जैसे हाथपांव होय हैं तैसे हाथपांव नाहीं हैं तासों वेदमें बिना हाथपांव वालो कह्यो है ? या संदेहको निर्णय श्रीगीताजीमें लिख्यो है । "सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्"।। अर्थ परमात्माके श्रीहस्त तथा चरणारविंद सर्वठिकाने विद्यमान हैं और हस्तचरणनको अन्तभी सर्वठिकाने वर्तमान है या गीतावाक्यसों स्पष्ट जान्यो जाय है कि परब्रह्म परमात्माके लौकिक हाथपांव नाहीं है क्योंकि लौकिक हाथपांव होंयतो सर्वठिकाने नहिं रहिसकें । तासों परमात्मा के हस्तचरण अलौकिक हैं ऐसें समुझनो चाहिये ।

ऐसेंही जब गीताजीमें संदेह होय वाको निर्णय व्याससूत्रनसो करनो, जैसे गीताजीमें लिख्यो अध्याय श्लोक "नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः" ।। अर्थ - जीव है सो नित्य है व्यापक है चेष्टारहित है और अचल है सनातन है। तथा दूसरे ठिकाणे गीताजीमें लिख्यो है श्लोक "ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।।" अर्थ- जीवलोक में जो जीव है सो मेरोही सनातन अंश है। अब इन दोनों वाक्यनके देखवेसों संदेह होवे है ज्यों जीवकूं व्यापक मानें हैं तो अंश नहीं होय सके ताको निर्णय अध्याय २ पाद ३ सूत्र १९ "उत्क्रान्तिगत्या गतीनाम्" । या व्याससूत्रसों होवेहै। या सूत्रको अर्थ-जीव उत्क्रमण करें हैं

अर्थात् या देहसों इन्द्रियनके छिद्रमें होके निकसेहै और यह जीव गमनकरेहै तथा आगमन करेहै। अर्थात् और लोकमें जावें है तथा और लोकसों यहां आवेहै। या सूत्रसों स्पष्ट जान्यो जायहै कि जीव अंश है व्यापक नाहीं है ज्यो व्यापक मानें तो जायवो आयवो नहीं बन सके जैसें आकाश व्यापक है तो आकाशको जायवो आयवो नाहीं मान्योजाय है। और गीतामें ज्यो जीव व्यापक है ऐसें लिख्यो है सो ताको निर्णय आगें "व्यापकत्व श्रुतिस्तस्य" या श्लोकमें लिखेंगे।

याही रीतिसों व्याससूत्रमें लिख्यो है के "जन्माद्यस्य यतः" अर्थ-ब्रह्म है सो जगत् को उत्पत्ति-स्थिति-नाशके करिवेवारो है यामें संदेह होय है कि जगत् है सो माया सहित ब्रह्मको बनायो भयो है अथवा शुद्ध ब्रह्मही या जगत्को कारण है ? अर्थः शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को बनायवेवारो है ताको निर्णय "अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा" ॥ भागवतके स्कंध २ श्लोकसों होवे है। अर्थ : ब्रह्मको जगत्में अन्वय है जैसे मृत्तिकाको घटमें अन्वय है। अर्थात् जितने घडा हैं उन सबमें मृत्तिका प्रविष्ट होय रही है। घड़ाको कोई अंश ऐसो नाहीं है जामें मृत्तिका नहिंहोय यहही मृत्तिकाको घटमें अन्वय है. याही प्रकार जगत्में कोई अंश ऐसो नहीं है जामें ब्रह्म प्रविष्ट नहीं होय अर्थात् सत्-चित्-आनन्दरूप ब्रह्म जितने जगत्में छोटे बड़े पदार्थ हैं उन सबमें विद्यमान है, जैसें घड़ामें "ये घड़ा है" यह जो

अनुभव है याहीसों 'अस्ति' को अनुभव कहे हैं। घड़ा की ज्ञान में आयवेकी ज्यो सामर्थ्य है सो ब्रह्म को 'चित्' धर्म है। यासों 'भाति' कहे हैं। घड़ा में जो आछो है यह आनन्द है याही सो 'प्रियम्' कहें हैं। याही रीतिसों जगत्के सर्वपदार्थ में "पटोऽस्ति" "पटो भाति" "पटः प्रियं" या प्रकारसों सच्चिदानन्दरूप ब्रह्मको अनुभव होवेहै तासों सर्वत्र ब्रह्म व्याप्त है। येही ब्रह्मको जगत्में समन्वय है, याहीप्रकार ब्रह्मको जगत्केसाथ व्यतिरेकभी है, जैसें घटके साथ मृत्तिकाको व्यतिरेक है। अर्थात् जो कूँडा बटेरा आदि जितने पदार्थ हैं उनमेंभी रहेहैं और इन सब पदार्थनसों अधिकभी बहुत मृत्तिका है- येही घटके साथ मृत्तिकाको व्यतिरेक है। केवल अन्वय वारो होय सो भी कारण नाहीं होय है जगत्कोभी जगत्में अन्वय है; केवल व्यतिरेक वारो होय सो भी कारण नहिं होय है खपुष्पको जगत्के साथ व्यतिरेक है किन्तु अन्वय-व्यतिरेक ये दोनों जाकें घटतें होंय वह कारण होवेहै। यासों निश्चय होयहै कि शुद्धब्रह्महो जगत्को कारण है। "जन्माद्यस्य यतः" "शास्त्रयोनित्वात्" या सूत्रमें भी शुद्धब्रह्म जगत्के प्रति कारण है या बातको वर्णन है। वेद 'गीता' व्याससूत्र भागवतकी समाधिभाषा इन चारप्रमाणन् सों मिलते भयेही मनुस्मृति आदि प्रमाण हैं ॥८॥

एतद्विरुद्धं यत्सर्वं न तन्मानं कथंचन॥९॥

अथवा सर्वरूपत्वान्नामलीलाविभेदतः॥

विरुद्धांशपरित्यागात्प्रमाणं सर्वमेव हि॥
द्वापरादौ तु धर्मस्य द्विपरत्वाद्द्वयं प्रमा॥१०॥

तत्वदीपप्रकाशः

एतद्विरुद्धमिति॥ एवं पूर्णज्ञानोदयावधि यत् ग्राह्यं प्रमाणत्वेन तन्निरूप्य तदनंतरं यत्प्रमाणं तदाह॥९॥अथवेति।

वाङ्मात्रमेव प्रमाणम् । अर्थस्य भगवद्रूपत्वात् । तदेवाह । सर्वरूपत्वादिति। रूपलीलावन्नामलीलाया विभेदानां वक्तव्यत्वात् । नानाविधानि वाक्यानि प्रवृत्तानि । विरुद्धवाक्यत्वेनैव परस्परं भासमानेषु अविरोधप्रकारमाह । विरुद्धांशपरित्यागादिति । विरुद्धांशपरित्यागो द्वेधा वक्तव्यः । भगवत्सामर्थ्येनालौकिकप्रकारेण भगवतः सर्वरूपत्वेन वा। अतो युक्तएवाविरोधः ।

उक्तमानचतुष्टयविरोधे मन्वादिस्मृती नामप्रामाण्यमेवेत्युक्तं तन्न युक्तम् । "यद्वै किंचन मनुरवदत्तद्भेषज" मिति श्रुतेर्मन्वादीनामुक्त-मानविरोधेपि प्रामाण्यस्यावश्यवाच्यत्वादित्यत आह। द्वापरादौ तु इति।

चोदनाविषयत्वेनावश्यकर्तव्यता-कत्वेनामिमतोर्थोऽत्र-धर्मशब्देनोच्यते । तस्य द्वे श्रुतिस्मृती उभे अपि परे प्रमापिके यस्य तादृशत्वात् द्वयं श्रुतिःतत्संवादिनी असंवादिनी च मन्वादिस्मृतिश्च एतद्द्वयमपि प्रमाणमित्यर्थः । यद्वा पूर्वोक्तधर्मस्य उक्तरीत्या द्विपरत्वात् श्रुतिसंवादिन्यसंवादिन्यपि स्मार्ते धर्मे इतिकर्तव्यताज्ञाने प्रमेत्यर्थः ॥१०॥ विरुद्धयोरविरोधख्यापनार्थं सांप्रतं लौकिकदृष्टांतमाह।

व्रजभाषाटीका

और जा शास्त्रमें इन चारों प्रमाणनूसों मिलती बातें होंय और कितनीक बातें बिना मिलती भी होंय वा शास्त्रकूंभी

पूर्णरीत्या प्रमाणता नहीं हैं। जहां तांई या जीवकूं ब्रह्म को ज्ञान नहिं होय तहाँ तांई इन चारों प्रमाणन् के अनुसार ही निर्णय करनो। पूरो ब्रह्मज्ञान होय जाय ता पीछे तो वाणिमात्र प्रमाण है। क्योंकि ब्रह्मज्ञानीकूँ जैसें सब पदार्थ भगवान्के रूप दीखें हैं तैसेंहीं सब शब्द भगवान्के नाम दीखेंहैं ॥८॥

या तरेहसु जहाँ ताई पूर्ण ब्रह्मज्ञान नहीं होय तहाँ तांई व्यवहारसिद्धिके लियें चार प्रमाण माननें। अब जहां एकही भगवान् के स्वरूपको कोई वाक्य में शिव रूपसों वर्णन है, कोई वाक्यमें विष्णु रूपसों वर्णन है, कोई ठिकानें निराकार रूपसों वर्णन है, कोई ठिकानें साकार रूपसों वर्णन है, या प्रकारके अनेक विरोध शास्त्रमें दीखवेमैं आवें हैं तहां भगवान् को अलौकिक सामर्थ्य जानकें अथवा सर्वरूप होयसकैहै ऐसें जानकें विरोध दूर करनो। भगवान्ने अपनी अलौकिक सामर्थ्य द्वारा छोटेसे अपने स्वरूपमें आखे ब्रह्मांडके दर्शन यशोदामाताकूं कराये हैं तथा कंस मामाजी की सभामें भगवान्ने अपनी सर्वरूपता दिखाई है, वहां मल्लनकूं वज्र से दीखे हैं। स्त्रियनकूं कामदेव दीखे हैं, वसुदेवदेवकीकूं बालक दीखेहैं, कंसकूं कालरूप दीखेहैं, ऐसेही और ठिकानेंभी समुझलेनो। सत्ययुगमें तो धर्ममें संदेहही नहीं होतो हतो ॥९॥ द्वापरयुगमें मनुष्यन्की बुद्धि मलिन होयवेसों धर्ममें संदेह भयो। तब श्रुतिस्मृति दो प्रमाणन्केद्वारा धर्मको निर्णय भयो। या विषयमें मत्स्यपुराणके प्रमाण आवरणभंगमें दिखायेहैं॥१०॥

विरुद्धवचनानाञ्च निर्णयानां तथैव च ॥११॥

यज्ञरूपो हरिः पूर्वकाण्डे ब्रह्मतनुः परे ॥

अवतारी हरिःकृष्णः श्रीभागवत ईर्यते ॥१२॥

सूर्यादिरूपधृक् ब्रह्मकांडे ज्ञानाङ्गमीर्यते ॥

तत्वदीपप्रकाशः

विरुद्धवचनानामिति । यथा स्मृतिवाक्यानि परस्परं विरुद्धानि स्मृतिव्याख्यानकारैःअविरोधप्रकारेण निर्णीयन्ते तथा निर्णयाना-मपि परस्परविरुद्धानां वैष्णवस्मार्त्तादिभेदेनाविरोध इत्यर्थः ।

अत्र प्रमाणचतुष्टये श्रुतिः सूत्राणि एकाः कोटि, गीता भागवत अपरा स्पष्टैव ॥ तत्रोभयत्र प्रमेयभेदाभावे द्वयनिरूपणार्थं भेदे विरोध इति कथमेकवाक्यतेत्याशङ्क्य द्वयं समर्थयितुमाह । यज्ञरूपः इति ।

''यस्सर्वज्ञस्सर्वशक्तिरिति'' श्रुतेः ज्ञानक्रियोभययुतः सर्वेषामर्थ स्तत्र क्रियायां प्रविष्टः क्रियारूपो यज्ञात्मा पूर्वकाण्डार्थः । ज्ञाने प्रविष्टो ज्ञानात्मा ब्रह्मरूपः उत्तरकाण्डार्थः । 'तनु' शब्दः साकारब्रह्म-प्रतिपादनाय । परे उत्तस्मिन् काण्डे ॥११॥ क्रिया ज्ञानं च द्वयं प्रकटीकृत्य योअवतीर्णः कृष्णः स श्रीभागवते विशिष्टो निरूप्यते । अतः खण्डशो निरूपणं वेदे, भागवते तु समुदायेन निरूप्य तस्य लीला अनेकविधा निरूप्यन्त इत्येकार्थत्वेपि पृथग्वचनं युक्तमित्यर्थः ।

वेदे पुराणे च क्वचिदन्यार्थप्रतिपादन-माशङ्क्य तेषामङ्गत्वमित्य-भिप्रायेणाह । सूर्यादिरूपधृगिति ।

ब्रह्मकांडे ज्ञानसिद्ध्यर्थमुपासना निरूप्यते । तच्चित्तशुद्धिद्वारैवेति केचित्, फलदानद्वारा माहात्म्यप्रतिपादनेन भक्तिद्वारेति सिद्धान्तः ॥१२॥

व्रजभाषाटीका

जैसे स्मृतिवाक्यनको विरोध स्मृतिकार व्यवस्था करकें निवृत्त करदेंहैं ऐसेंही जिन निर्णयनमें परस्पर विरोध होय वहांभी वैष्णव-स्मार्त्तादि भेदसों व्यवस्था करलेनी ॥१०॥

माने भये चारप्रमाणन्में दो विभाग हैं। एकविभाग में तो वेद और सूत्र दूसरे विभागमें श्रीभागवत और श्रीगीताजी तहां वेदके दो विभाग हैं : (१) पूर्वकांड और (२) उत्तरकांड। तहां पूर्वकांडमें क्रियामें भगवान्नें प्रवेश कियो तब आप क्रियारूप होयकें वेदमें 'यज्ञ' नामसों प्रसिद्ध भये। तासों यज्ञरूपी भगवान् पूर्वकांडको अर्थ है, ऐसेंही उत्तरकांड जो उपनिषद् है उनमें भगवान्नें ज्ञानमें प्रवेश कियो तब आप ज्ञानरूप होयकें वेदांतमें 'ब्रह्म' नामसों प्रसिद्ध भये। तासों यज्ञरूप भगवान् उत्तरकांडको अर्थ है। श्रीगीताजी तथा श्रीभागवतजीमें क्रिया और ज्ञान इन दोनों धर्म सहित जिननें अपनों स्वरूप प्रकट कियो है उन मूलरूप श्रीकृष्णचन्द्र को वर्णन है ॥११॥

शंका-उत्तरकांडमें जो ज्ञानरूप भगवान्कोही वर्णन है तौ सूर्य, वायु आदि देवतानकी उपासना क्यों लिखी ? तासों जा स्थलमें उपासनानको वर्णनहै ता स्थलकूँ उपासनाकांड कहनो चैये ? समाधान उपासनाकांड जुदो नहिं है। अंशकेद्वारा सूर्य, वायु आदिरूप भगवान्नेंही धारणकरेहैं उन रूपन्की उपासना करवेवारेंनकूँ शास्त्रानुसार

फल देकें अपनो माहात्म्य जतावेहैं माहात्म्य जानवेसों आपके विषें भक्ति होयहै, भक्तिसों ज्ञान होवेहै, या प्रकारसों ब्रह्मज्ञान होयवेके लियेंही उपासना को वर्णन है। तासों उपासनाको उत्तरकांडमें ही अन्तर्भाव है ॥१२॥

पुराणेष्वपि सर्वेषु तत्तद्रूपो हरिस्तथा ॥१३॥
भजनं सर्वरूपेषु फलसिद्ध्यै तथापि तु ॥

तत्वदीपप्रकाशः

तथा पुराणोक्तानां दुर्गागणपतिप्रभृतीनां विशिष्टशेषत्वमावरणदेवतात्वेन तथापि भिन्नार्थत्वमाशंक्य तत्तद्रूपो हरिस्त-थेत्युक्तम्। साधनरूपः फलरूपश्च स्वयमेवेत्येकवाक्यता। अत्रावान्तरनिर्णयं वक्तुं भक्तिमार्गे विशेषमाह। भजनं सर्वरूपेष्विति।

ज्ञानमार्गे न कोपि विशेषः क्वापि सर्वस्यापि पूर्णब्रह्मत्वात्। वक्ष्यति च ''अखण्डं कृष्णवत्सर्व'' मिति भक्तिमार्गे तु न तथा। यथा भगवान् जगत्कृतवान् तथा स्वार्थं भक्तिमार्गमपि पृथक्कृतवान्। विभूतिरूपेषु साधनानि फलानि च व्यवस्थया कृतानि ॥१३॥

व्रजभाषाटीका

ऐसेंही पुराणनूमें जो दुर्गा गणपति आदि देवतानकी उपासना लिखी है तथा ब्रह्मके समान जगत्‌की उत्पत्ति रक्षा-संहार करवेकी सामर्थ्य लिखी है सो पूर्ण क्रिया-ज्ञानशक्तियुक्त जो मूलरूप परब्रह्म श्रीकृष्ण जिनको श्रीभागवतमें वर्णन किये हैं तिनको माहात्म्यकूं उपासकनकूँ वांछित फल देकें जतावे हैं, और माहात्म्यज्ञानके द्वारा

मूलरूपकी भक्तिके बढायवेवारी है तासों स्वयं भगवान्नेही दुर्गा गणपति इत्यादि अनेक साधनरूप धारणकरे हैं । एकादशस्कन्धमें मनुष्यनके कल्याण करवेवारे तीन मार्ग भगवान्नें उद्धवजीप्रति कहे हैं १कर्ममार्ग, २ ज्ञानमार्ग, ३ भक्तिमार्ग तहाँ कर्ममार्ग तो ज्ञानमार्गको सहायक है, कल्याणके करवेवारे दोई मार्ग हैं, १ ज्ञानमार्ग तथा २ भक्तिमार्ग तहाँ ज्ञानमार्गमें तो सब पदार्थ ब्रह्मरूप हैं तासों कोई रूप की ब्रह्म मानकें उपासना करी जाय तो ब्रह्मभावरूप फल मिलजावे है। ताहीसों वेदमें "अन्नं ब्रह्मेत्युपासीत मनो ब्रह्मेत्युपासीत" इत्यादि श्रुतिन्में अन्न मन आदिकन्कीभी ब्रह्मरूप मानकें उपासना लिखी है, भक्तिमार्गमें तो जैसे अपनी क्रीड़ाके लियें भगवान्नें जगत् बनायो है तैसेंही जीवनकूँ अपनी प्राप्ति करवेके लियें भक्ति मार्ग प्रकट कियो है । या मार्गमें और देवता श्रीकृष्ण की विभूतिरूप हैं । कामनावारेन्कों और- और फलन्कूँ दें हैं, और निष्काम होयके ज्यों विभूतिरूप देवतानकी भक्ति करीजाय तो कालान्तरमें पुरुषोत्तममें भक्ति होय है यह बात ब्रह्मपुराणमें अन्तमें मायानुकीर्तनाध्यायमें लिखी है, और अन्य देवतानकी भक्ति करवेसों यज्ञमें भक्ति होय है । बहोत यज्ञादिक करवेसों अग्नि प्रसन्न होय है तब सूर्यमें भक्ति होय है । सूर्य जब प्रसन्न होय है तब शिवमें भक्ति होवे है । शिव जब प्रसन्न होवे हैं तब केशव भगवान्में भक्ति होवेहै ।

केशव भगवान् जब प्रसन्न होवें हैं तब पूर्णफलकी प्राप्ति होवे है ।।१३।।

आदिमूर्तिः कृष्णएव सेव्यः सायुज्यकाम्यया ।।
निगुर्णा मुक्तिरस्माद्धि सगुणा सान्यसेवया ।।१४।।

तत्वदीप प्रकाशः

पूर्णफलदानं च स्वस्मिन्नतो भजनं मूलरूपएव कर्त्तव्यम्। ततः किं स्यादित्याशंक्याह। सायुज्यकाम्ययेति। "ब्रह्मविदाप्नोतिपरम्" इत्यत्र यत्सायुज्यं मुख्यतया निरूपितं तत्कामनायां सत्यां कृष्णएव सेव्यः । कृष्णपदेन च बहिर्भजनमेव मुख्यमिति निरूपितम्। "यो वेद निहितं गुहाया" मितितु ज्ञानमार्गे।

ननु सर्वत्रैव तत्तद्देवतासायुज्यं फलत्वेन श्रूयते। ततो विशेषः क इति चेत्तत्राह। निर्गुणा मुक्तिरस्माद्धीति।

सायुज्यंमुक्तिर्निर्गुणे सायुज्ये निर्गुणा भवति सगुणे सगुणा। भगवद्व्यतिरिक्ताः सर्व एव कालपर्यन्तं सगुणाः। कालोपि गुणानुरोधीति सगुणप्रायः। अक्षरस्य प्रकारस्तु वक्तव्यः "मनिष्ठं निर्गुणं स्मृत" मिति "तं भजन्निर्गुणो भवेदिति" च वाक्यात् कृष्णसायुज्यमेव निर्गुणा मुक्तिः। अक्षरज्ञानमार्गयोरे-कत्वात्। द्वयमेकेन समाहृतम्।।१४।।

व्रजभाषाटीका

पूर्ण फलदानसामर्थ्य तो मूलरूपमेंही है । गीताजीमें "अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः" या श्लोकमें भागवतमें "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" या श्लोकमें और वेदमें गोपालतापनी उपनिषदम् में श्रीकृष्णकोंही मूलरूपता लिखी है। तथा ब्रह्मवैवर्तके ब्रह्मखण्डके द्वितीयाध्यायमें गोलोककूँ

नित्यता लिखीहै । गोलोकमें योगिन्के ध्यान में जो ज्योतिरूप आवेहै ताको वर्णन है, योगिनकूं आपको स्वरूप ज्योतिरूपही भासमान होवे है । वा ज्योतिमें प्रकृतिसों पर नित्य निर्गुण आपको मेघश्यामस्वरूप विराजेहै । वह स्वरूप द्विभुजहै कोटिकंदर्प जैसो लावण्यवारो है वाही स्वरूपसों ब्रह्मा, विष्णु, सावित्री, शिव, धर्म, सरस्वती, दुर्गा आदिकन्की उत्पत्ति लिखी है- इत्यादि अनेक प्रमाण हैं, या विषयको पंडितकरभिंदिपाल तथा प्रहस्तवादमें विस्तारसों वर्णन है । मुख्य सायुज्यरूप फलकूं भगवान्ही देवें है तासों सायुज्यके अर्थ आदिमूर्ति श्रीकृष्णहीकी सेवा करनी चाहिये। सायुज्यको स्वरूप श्रुतिमें लिख्यो है । यजुर्वेदब्रह्मवल्लीमें "सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता" इति अर्थ : कृष्णसेवा करवेवारो जो भक्त है सो परब्रह्म श्रीकृष्णके साथ सर्वकामन्को भोग करेहै, बाहिर प्रकटभये ज्यो श्रीकृष्णचन्द्र हैं उनहीकी सेवासों सायुज्यफलकी प्राप्ति होय है । और देवतानकी उपासनासोंभी तो उन देवतान्के साथ सायुज्यमुक्ति होय है । परन्तु वह सायुज्यमुक्ति सगुणमुक्ति है । क्योंकि कालकों आदिलेकें सबदेवता सगुण हैं, श्रीकृष्णचन्द्रतो निर्गुण है श्रीकृष्णचन्द्रको ज्ञानभी निर्गुण है तथा श्रीकृष्णचन्द्रके भजन करिवेवारोभी निर्गुण होजावे है यह बात एकादशस्कंधमें लिखी है "मन्निष्ठं निर्गुणं स्मृतम्" तथा दशमस्कंधमें "तं भजन्निर्गुणो भवेत्"॥१४॥

ज्ञानेपि सात्विकी मुक्तिर्जीवन्मुक्तिरथापि वा ॥
ज्ञानी चेद्भजते कृष्णं तस्मान्नास्त्यधिकः परः ॥१५॥

तत्वदीपप्रकाशः

ज्ञानेपि सात्विकी मुक्तिरिति। ज्ञानमार्गः सगुणएव "सत्वात्संजायते ज्ञान" मिति वाक्यात्। अतएव ज्ञानिनो भीताः संसाराद्विरक्ता भवंति।

एवं ज्ञानमार्गे प्रवृत्तस्य सगुणत्वमुपपाद्य ज्ञानसंपत्तियुक्तस्य न सगुणत्वमित्याशंक्याह। जीवन्मुक्तिरथा-पिवेति। वेत्यनादरे मुख्यपक्षे "समासेनैव कौंतेये" तिवाक्यसंदर्भे ब्रह्मभावानंतरं भक्तिर्भवतीति गुणातीतएव प्रवेशः "ते प्राप्नुवंति मामेवे" तिवाक्यात्तदभावे केवलं जीवन्मुक्ता भवंतीति सनकादितुल्याः सगुणाएव। इममेव विशेषं वक्तुं भगवानाह "सर्वभूतहिते रता" इति। अतएव शुकादीनां भक्तिमार्गोपदेशनद्वारा सर्वभूतहिताचरणम्।

यस्तु पूर्वं ज्ञानमार्गे प्रवृत्तः प्राप्तज्ञानः कृष्णसेवार्थं यतते तन्निष्ठां परित्यज्य-समहानित्याह। ज्ञानी चेद्भजते कृष्णमिति।

यद्यपि ज्ञानमार्गोपि विषयो निर्गुणस्तथापि मार्गः सगुण इति भक्तिमार्गोत्कर्षः। क्रियाशक्तेरिंद्रियाणां वैफल्यं ज्ञानमार्गे। तस्माद्भक्तिमार्गानुसारेण कृष्णएव सर्वेषां सेव्य इति निरूपितम् ॥१५॥

व्रजभाषाटीका

अक्षरब्रह्म यद्यपि निर्गुण है तथापि ज्ञानसों जैसें सात्विकी मुक्ति होय है, ऐसें अक्षरब्रह्मोपासनासों भी सात्विकी मुक्ति होयहै। क्योंकि "सत्वात् संजायते ज्ञानं" यावाक्यमें सतोगुणसों ज्ञानकी उत्पति लिखी है। तासों ज्ञान सगुण है।

ज्ञानसों सगुण मुक्तिही होवेहै तामें प्रमाण श्रीभागवतमें "कैवल्यं सात्विकं ज्ञानम्" अर्थ-सात्विकज्ञानही मोक्षहै। "त्रैगुण्यविषया वेदाः" वेदोक्तज्ञानभी सगुण है तासों वेदके लिखे ज्ञानसोंभी सगुणमुक्ति होवेहै तासों ज्ञानमार्गमें ज्ञानद्वारा जीव कदाचित् जीवन्मुक्त होय तो भी सगुण ही रहे है, जैसें सनकादिक जो ये निर्गुणहोते तो जय-विजयकूं शाप नहिं देते, ज्ञानद्वारा ब्रह्मभाव जिनकों सिद्ध भयो होय ता पीछें कृष्णकी जब भक्ति होय तब निर्गुण होयहै, जैसें शुकदेवजी निर्गुण जीवन्मुक्त हैं ताहीसों सब जीवन के हितकारी हैं। गीताजीमें "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहितेरताः" या श्लोक में सर्वभूतहितकारी ज्ञानी भक्त मोकूं प्राप्त होय है यह लिखी है। तासों पहली ज्ञानमार्गकी रीतिसों ब्रह्मज्ञानी होयके पीछे ज्ञाननिष्ठा छोडके परब्रह्मश्रीकृष्णकी भक्ति करेंहै। हस्तपादादि कर्मेंद्रियनकों तथा नेत्रश्रवणादि ज्ञानेंद्रियन्कों प्रभु सेवाकरकें सफल करेंहैं वह ज्ञानी भक्त सबज्ञानीन्में श्रेष्ठहैं। तासों ज्ञानमार्गमेंभी ज्ञानीकों भक्तिद्वाराही निर्गुणकी प्राप्ति होय है, तथापि ज्ञानमार्ग पहलेसों सगुण है और भक्तिमार्गतो प्रथमही सों निर्गुण है तासों भक्तिमार्ग को उत्कर्ष जानिके भक्तिमार्गकी रीतिसों कृष्णकीही सेवा सबनकूँ करनी चाहिये ॥१५॥

बुद्धावतारे त्वधुना कलौ तद्वशगाः सुराः ॥
नानामतानि विप्रेषु भूत्वा कुर्वन्ति मोहनम् ॥१६॥
यथाकथंचित्कृष्णस्य भजनं वारयन्ति हि ॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु एवं सति कथं न सर्वे सेवन्त इत्याशङ्क्याह। बुद्धावतारे इति। 'तु' शब्दः शङ्कां वारयति। कलिकालः स्वभावतः सर्वोत्कृष्टः स्वल्पसाध-नेऽपि महाफलप्रदः। अतो दैत्यव्यामोहार्थं भगवान् बुद्धोवतीर्णः सर्वप्रमाणमूलभूतं वेदं दूषितवान्। ततः पुराणादि-मार्गदूषणार्थं तद्वशगा सुराअपि तथा अनिषिद्धवेषमाश्रित्य ब्राह्मणानां बुद्धिनाशार्थं तेष्वेवावतीर्य मोहनार्थं नानामतानि कुर्वन्ति काणादन्यायमायावादादिरूपाणि। वाक्पेशलत्वात् मोहनरूपत्वम्।

ननु तेषां शास्त्राणां मुक्तिः फलं तथैव तत्र-तत्र प्रतीयते तत्कथं मोहनं फलमिति चेत्तत्राह ॥१६॥ यथाकथंचिदिति।

वैदिके मार्गे जागरूके पौराणिके च तेनैव मार्गेण स्वयमृषित्वं देवत्वं च प्राप्ताः किमित्यन्यथावेदविरोधेन शास्त्रमवादिषुर्यदि मुक्तिरेव संपाद्या स्यात्। अतः सिद्धे राजमार्गेपि पुनः स्वयमतिक्लेशेन यच्छास्त्राणि कृतवन्तः। अतो ज्ञायते मोहार्थमेव शास्त्रकरणम्। नापि तथाकरणे भगवतो विसम्मतिः भगवतैव तथा ज्ञापनात्। "त्वं च रुद्र महाबाहो मोहशास्त्राणि कारय, अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज। प्रकाशं कुरु चात्मानमप्रकाशं च मां कुरु"। इति वाराहवचनं ब्रह्माण्डोक्तं तथापरं "अमोहाय गुणा विष्णोरापारःरश्चिच्छरीरता। निर्दोषत्वं तारतम्यं मुक्तानामपि चोच्यते॥ एतद्विरुद्धं यत्सर्वं तन्मोहायेति निश्चयः"। उक्तं पद्मपुराणे च "शैव एव शिवेन तु। यदुक्तं हरिणा पश्चादुमायै प्राह तद्धरः। त्वामाराध्य तथा शंभो गृहीष्यामि वरं सदा। द्वापरादौ युगे भूत्वा कलया मानुषादिषु। स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान् कुरु। माञ्च गोपय येन स्यात्सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा"। एतदभिसंधायाह। यथाकथञ्चित् कृष्णस्ये इति। ते ह्यलौकिकद्रष्टारः। "एवं मायावादाद्यनुसारेण शास्त्रे कृते लोका भगवद्बहिर्मुखा भविष्यन्ति" इति तथा कृतवन्तः इत्यर्थः।

व्रजभाषाटीका

शंका-जो कृष्णसेवाही सर्वोत्तम है तो सबही मनुष्य क्यों नहीं कृष्णसेवा करेहैं ? ताको उत्तर 'बुद्धावतारे' या श्लोकमें लिखें हैं। गीताजीमें दैवजीव और आसुरजीव दोय प्रकारके जीव लिखे हैं। जब आसुर जीव अर्थात् दैत्यलोग श्रेष्ठमार्गमें प्रवृत्त होयवे लगें तब उनकूं मोह करायवे के लियें भगवान्नें बौद्धावतार धारणकियो और धर्मके मूल जो वेद हैं तिनकी निंदाकरी और देवतानकूँभी आज्ञा दीनी जो तुमभी पुराणन्की निन्दा करकें दैत्यन्कूँ मोह करावो, तब देवतान्नें भी भगवान् की प्रेरणाके आधीन होयकें, ऋषिन्के कुलमें जन्म लेकें निन्द्यवेष धारण करकें वैशेषिक न्याय, मायावाद चार्वाक निरीश्वरसांख्य आदि खोटेशास्त्र बनाये, इन शास्त्रनमें ऐसीं बातें लिखी हैं के जिनके सुनवे-पढवेसें जीवकी बुद्धि बिगड़जाय और उनकेही मतमें लगजावे ॥१६॥

शंका : जो न्याय मायावाद आदि शास्त्र जीवनकूं धोकादेवेकूँही बनें हैं तो उन शास्त्रनमें मोक्ष फलकों क्यों वर्णन कियो हे ? समाधान:मोक्षफलके देवेवारे चारों वेद तथा अष्टादश पुराण विद्यमानही हैं फिर उनकूं छोडकें अपनी बुद्धिके अनुसार नये- नये मोक्षसाधन उन शास्त्रन्में बताये हैं तासों मालूम होय है के ये शास्त्र अवश्य जीवकूँ मोह करायवेवारे हैं। प्रथम मोहकशास्त्र बनायवेकी आज्ञा शिवजीके प्रति भगवान्नें करीहै यह बात वाराहपुराणमें

रुद्रगीतामें लिखी है। वहांको श्लोकः "त्वंच रुद्र माहाबाहो मोहशास्त्राणि कारय"। अर्थ-हे रुद्र ! तुम मोहक शास्त्र बनावो। तथा पद्मपुराणमें लिखी है। "स्वागमैः कल्पितैस्त्वञ्च जनान्मद्विमुखान्कुरु" ॥ अर्थ - भगवान् आज्ञा करें हैं हे रुद्र ! तुम अपने बनाये शास्त्रन्के द्वारा मनुष्यनकूं "मोसों विमुख करो"। तब शिवजीनें भगवान् की आज्ञा मानकें मोहकशास्त्र बनाये, तथा अपनी शक्तिसों ऋषिनकी बुद्धि बिगाड़कें ऋषिन्के द्वाराभी मोहकशास्त्र बनवाये। ताको प्रमाण पद्मपुराणके उत्तरखंडमें लिख्यो है। वहांके श्लोक "मच्छक्त्यावेशितैर्विप्रैः संप्रोक्तानि ततःपरम्" इत्यादिश्लोक पुरुषोत्तमजीकृत आवरणभंगमें निबंधके पिछले सोलहवें श्लोक १६की व्याख्या में लिखेहैं यासों यह निश्चय भयो कि उन अलौकिक दृष्टा ऋषिलोगन्में भ्रामक मायावादादिकन् के अनुसरण करवेवारे शास्त्र बनायकें जैसे बने तैसें मनुष्यन्कूँ कृष्णकी सेवासो हटावें हैं।

अयमेव महामोहो हीदमेव प्रतारणम् ॥१७॥

यत्कृष्णं न समजेत्प्राज्ञः शास्त्राभ्यासपरः कृती ॥
तेषां कर्म्मवशानां हि भव एव फलिष्यति ॥१८॥

ज्ञाननिष्ठा तदा ज्ञेया सर्वज्ञो हि यदा भवेत् ॥
कर्मनिष्ठा तदा ज्ञेया यदा चित्तं प्रसीदति ॥१९॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु मुग्धाश्चेत्संसारेपि भ्रांताइव पशुपुत्रादिषु कथं न मुग्धा जायन्ते तत्राह। अयमेव महामोह इति।

नह्यल्पार्थे तेषां प्रवृत्तिः। महामोहस्त्वयमेव क्रियाज्ञानशक्तिसद्भावेऽपि कृष्णं न भजेत्। परप्रतारणं चैतदेव यतस्तं महान्तं मन्वाना अभजन्तं दृष्ट्वा स्वयमपि न भजन्ते। प्राज्ञः इति। ज्ञानशक्तिप्राबल्यं। शास्त्राभ्यासपरः इति। मिथ्याज्ञानाभिनिवेशः साधनसंपत्तिर्वा। कृतीति क्रियासामर्थ्यं।

एवं शास्त्रकरणाद् बहवो विमुखा जाता इति निरूप्य तथापि भगवत्सेवकोक्तप्रकारेण प्रवृत्ता इति सत्फलमेव भविष्यतीत्याशंक्याह। तेषां कर्मवशानां हि इति। न हि शास्त्रकर्तारो बलात्कंचन प्रवर्त्तयन्ति। नापि "महान्त एते" इति कश्चित्तत्र प्रवर्तते। किंतु दुरदृष्टवशात्तदुक्तेर्थे श्रद्धाजायते।

अन्यथा सर्वसंमतंवेदं परित्यज्य तत्र कथं प्रवृत्ताःस्युः। अतः प्रारब्धवाशादेव तत्र प्रवृत्ताः संसारमेव फलमाभूतसंप्लवं प्राप्स्यन्ति। "सृष्टिरेषोत्तरोत्तरा"इति वाक्यात्। भगवद्विरोधाचरणेतु नरकेऽपि पातः। भवः संसारदुःखात्मकः फलिष्यति॥१८॥

ननु तानि शास्त्राणि ज्ञान प्रतिपादकानि क्वचित् कर्म प्रतिपादकानि चित्त शुद्ध्यर्थं क्वचित् भक्ति प्रतिपादकानि च कथं मोहप्रतिपादकानीत्याशङ्क्याह ज्ञाननिष्ठेति सार्द्धेन।

यत्तत्वमस्यादि-वाक्योपदेशेनैवापरोक्षं ज्ञानमुत्पद्यत इति दुर्बलान् व्यामोहयितुमुक्तवन्तस्तन्न ज्ञानम्। तथासति सर्वज्ञता स्यात्। "यस्मिन्विदिते सर्वमिदं विदित मिति।" कर्मणीव ज्ञानेपि निदर्शनानामुक्तत्वात् यथा कारीर्यामिश्वमूत्रणादिकम्। यथा वा दीर्घसत्रारम्भे अपूपदाहस्तथा ज्ञानेऽपि सर्वज्ञत्वं तेजोऽपि निर्दशनम्।

तस्मान्नैतज् ज्ञानमिति ज्ञातव्यमित्येतदर्थमाह। सर्वज्ञो हि यदा भवेद् इति। नापि तदुक्तप्रकारेण कर्माणि फलं प्रयच्छन्ति । 'यज्'धातोःभगवत्पूजार्थस्य स्वरूपाज्ञानेन वृथाकरणात्। यज्ञादीनामनित्यत्वभावनाच्च। श्रुत्युक्तप्रकारेण पदार्थज्ञाननिराकरणाच्च। अतो यागादिकमपि कृत्वा लुब्धा एव भवन्ति। न चित्तशुद्धिं लभन्ते॥१९॥

व्रजभाषा टीका

और यही बड़ीभारी भूल है तथा येही बड़ो ठगाय जायवो है॥१७॥ जो ज्ञानवान्होयकें शास्त्रकूँ पढके और सेवा करबेकी सामर्थ्य पाय केंभी श्रीकृष्णकी सेवा नाहीं करें है। यद्यपि मोहकशास्त्र बनायवेवारे ऋषिलोग मनुष्यन्कूँ जबरदस्तीसों अपने-अपने बनाये शास्त्रन्में नहीं प्रवृत्त करेंहैं तथापि मंदभागी जीव अपुने मनसोंही खोटेशास्त्रमें प्रवृत्त हो जावें हैं वे जीव अपनें कर्मानुसार सदा संसार चक्रमेंही भ्रमते रहेंहैं॥१८॥

शंका : जिन मायावादादि शास्त्रन्कूं भ्रमकरवेवारे कहोहो उनशास्त्रन्में कहींतो बह्मज्ञानको वर्णन है, कहुं चित्तशुद्धि के अर्थ कर्मको वर्णन है कहीं भक्तिको वर्णन है तो वे शास्त्र मोह करायवेवारे हैं ये बात कैसें बन सके है ?

उत्तर : उनशास्त्रन्में जहाँ ज्ञानको वर्णनहै वहाँ साधन बिना "तत्वमसि", गुरुशिष्यके प्रति उपदेश देतहैं "हे शिष्य! तू ब्रह्म है" इत्यादि वाक्यके उपदेशमात्रसों साक्षात् ब्रह्मज्ञान होय जायहै या रीतिसों कहिकें ज्ञानरहित भोले

मनुष्यन्कूं धोखा दियो जाय है ज्यो "तू ब्रह्म है" ऐसें कहिवेहीसों शिष्यकूँ साक्षात् ब्रह्मज्ञान होजातो होयतो उपदेश होतेही शिष्यकों जगत्के सब पदार्थन्को ज्ञान होजानों चाहिये। अर्थात् यहाँ बैठो भयोही सब ठिकानें के भूत-भविष्यत् वृत्तान्त कहिदे सकतो होतो ! क्योंके सर्वज्ञ होजानो ब्रह्मज्ञानीकी निसानी है। "यस्मिन्विदिते सर्वमिदं विदितं भवति" या वेदकी श्रुतिमें ब्रह्मज्ञान होयवेंसों सब पदार्थको ज्ञान होजायहै यह बात लिखीहै ऐसेंही जहाँ कर्म को वर्णन कियोहै वहाँ वेदमें लिखे अग्निहोत्र यज्ञ आदि कर्मन्कूँ अनित्य बतायेहैं। और 'यज्ञ' है सो भगवान्की पूजा है या बातकूं भी नहीं जानें हैं क्योंकि यज्ञ शब्द 'यज्' धातुसों बन्यो है। 'यज्' धातुको देवपूजा अर्थ है। और भगवान्के अंगरूप वायु अग्नि आदि देवतान्की वेदमें साँची प्रशंसा अर्थवादमें लिखीहै ताकूँ झूठी समझें हैं और भगवान्कूँ कर्मके फल देवेवारे नहीं मानेंहैं। अपने मनके अपूर्वकूं फलदाता कहैं हैं। तासों उनकी बताई रीतिसों कर्म करवेसों लोभही बढे है चित्तशुद्ध नहीं होयहै और कर्मकी निष्ठा भई तबही जाननो जब चित्त शुद्ध होय के प्रसन्न होय ॥१९॥

भक्तिनिष्ठा तदा ज्ञेया यदा कृष्णः प्रसीदति ॥
निष्ठाभावे फलं तस्मान्नास्त्येवेति विनिश्चयः ॥२०॥

निष्ठा च साधनैरेव न मनोरथवार्तया ॥
स्वाधिकारानुसारेण मार्ग स्त्रेधा फलाय हि ॥२१॥
अधुनाह्यधिकारास्तु सर्वएव गताः कलौ ॥
कृष्णश्चेत्सेव्यते भक्त्या कलिस्तस्य फलाय हि ॥२२॥
सर्वेषां वेदवाक्यानां भगवद्वचसामपि ॥
श्रौतोर्थो ह्ययमेव स्यादन्यः कल्प्योमतान्तरैः ॥२३॥
कृष्णवाक्यानुसारेण शास्त्रार्थं ये वदन्ति हि ॥
ते हि भागवताः प्रोक्ताः शुद्धास्ते ब्रह्मवादिनः ॥२४॥
एतन्मतमविज्ञाय सात्विका अपि वै हरिम् ॥
मतान्तरैर्न सेन्वते तदर्थं ह्येष उद्यमः ॥२५॥

तत्वदीपप्रकाशः

तथा भक्तिमार्गमपि ज्ञानशेषतयोपदिशन्ति। ज्ञानपर्यन्तं च तत्करणमित्याहुः। भावनाकल्पितत्वं च विषयस्याहुः। अतो भगवदर्थं भगवान्न सेव्यत इति न कृष्णस्तुष्यति। यदि सा भक्तिर्भवेत्कृष्णः तुष्येत्। "भक्त्यैव तुष्टिमभ्येतीतिवाक्यात्"। तस्मात्तदुक्तप्रकारो व्यर्थ इत्यर्थः।

ननु मुख्यफलाभावे तदुक्तप्रकरेण गौणंफलं भविष्यतीत्याशङ्क्याह। निष्ठाभावे इति।

न हि महागृहारम्भेसामिकृते ततः किंचित्फलमस्ति। न वा नदीतरणार्थं प्रवृत्तो हस्तमात्रावशिष्टेऽपि निमग्नः पारगमनं फलं प्राप्नोति। ननुअनेनाग्रे निष्ठैव भविष्यतीति चेत्तत्राह। निष्ठा च साधनैरेवेति। वेदोक्तैरेवेति न तु प्रतिष्ठार्थं व्याख्यान-मनोरथवार्तया।

ननु त्रितयं किञ्चित्-किञ्चिद् अनुष्ठितं फलं साधयिष्यतीत्याशङ्क्याह। स्वाधिकारानुसारेणइति।

मार्गगता एव ज्ञानादयः फलदाः यथा गोदोहनादयः कर्मगताएव तथा तत्तत्साधनादिसहिता एव ते ज्ञानादयः फलदा अन्यथा प्रकरणभेदेन तन्निरूपणं न स्यात्।

ततः किमत आह। अधुनेति।

कालवशादेवाधिकाराः निवृत्ताः न साधनैः कर्तुं शक्यन्ते। नन्वेवं सति मुख्यभक्ति मार्गेऽपि समः समाधिरिति चेत्तत्राह। कृष्णश्चेत्सेव्यते इति। अवतीर्णो हि भगवान् सर्वमुक्त्यर्थमिति प्रमेयबलेनैव फलिष्यतीति स्वाधिकाराभावेपि ततः फलं भविष्यतीत्यर्थः। चेद् इति सेवायां दुर्लभत्वमुक्तम्। भक्त्या न तु विहितत्वेन कलिस्तस्य इति कालस्तुअनुगुण एवेत्यर्थः। "कलौ तद्-हरिकीर्तनादिति" वाक्यात् अतोऽधिकारेणानधिकारेण वा कृष्णभजनं कर्तव्यमिति सिद्धम्।

अत्र सर्वेषां प्रमाणानामेकवाक्यतामाह। सर्वेषम् इति। श्रोतःअभिधया निरूपितः ॥ अन्यः तत्तन्मतानुसारेणोक्तः कल्प्यो न वाचनिकः ॥

नन्वत्र द्वयं निरुक्तं वेदा भगवद्वाक्यानि च तत्रैकेनैव शास्त्रार्थनिष्पत्तावन्यवैयर्थ्य-मित्याशङ्क्याह ॥ कृष्णवाक्यानुसारेणेति।

शास्त्रार्थं वेदार्थम्। भगवद्वाक्यानि वाक्यशेषरूपाणि सन्देहेनिर्णायिकानि। एवं वक्तारो भागवता भगवत्सम्बन्धिनो विद्वांसः। अनेन भक्ता इत्युक्तम्। त एव च शुद्धाः कर्मिणो यथोक्तकर्मज्ञानात्। त एव च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः यथोक्तब्रह्मस्वीकारात्।

नन्वेतदुभयं पूर्वमेव वर्त्तते इति किं भवतो ग्रन्थकरणप्रयासेने-त्याशङ्क्याह। एतन्मतमिति।

मतं सिद्धान्तम्। सात्त्विका इति स्वरूपयोग्यता। अभजने येषां शास्त्रान्तरमेवप्रयोजकं न तु स्वभावस्तेषां मतनिराकरणेन प्रवृत्तिः सम्पाद्यते इत्यर्थः ॥२५॥

व्रजभाषाटीका

याही रीति जहाँ उन मोहक शास्त्रनूमें भक्तिको वर्णन है वहाँ भगवान्की भक्तिकूं मुख्यफल नहीं बतावेंहैं। केवल ज्ञान होयवे के लियें भक्ति करनी और ज्ञान नहीं होय जहाँताँई तहांतांई भक्ति करनो ज्ञानभयें पीछें भक्तिको कछु काम नहीं शुद्ध परब्रह्मकी भक्ति नहिहोयसके है। भावना कल्पित अर्थात् अपनी बुद्धि कल्पित भगवानके स्वरूप-हीकी भक्ति होय है। या रीतिसों मानेहैं। तासों उनके बताये भक्तिमार्गमें भगवान्की प्रसन्नता के लिये भगवान्की सेवा नहीं करीजावेहै किन्तु ज्ञानकेलिये करीजावेंहै। वा भक्तिसों भगवान् नहिं प्रसन्न होवें है। और भक्ति वाहीसो कहनों जासों भगवान् प्रसन्न होय। क्योंकि, "भक्त्यैव तुष्टि मभ्येति"। अर्थ- भगवान् भक्तिसोंही प्रसन्न होय है। भक्तिनिष्ठा तबही भई जानो जब कृष्ण प्रसन्न होय। मोहक शास्त्रकी रीतिसों वर्त्ताव करें सो ज्ञान- भक्ति-कर्म इन तीनोंमैसों कछुभी पूरो नहिं सिद्ध होय है। और पूरो सिद्धभये विना फल नहीं होय है। जैसे रहवेकेलिये महल बनायवेको प्रारंभ करकें आधीभीतें बनायकें छोडदेवेसों कछु फल नहिंहोय और जैसे नदीतरवेवारो सब नहीं तरकें हाथभरकी छेटीसों डूबजाय तो वाको परिश्रम वृथाही जावेहै ॥२०॥ यासों यह निचोडभयो वेदशास्त्रके अनुसार साधनकरें सोंही ज्ञानभक्ति कर्म पूरें सिद्ध होवेंहैं प्रतिष्ठा के लियें वेदशास्त्रनूके

मनचाहे अर्थ करवेसों कछुनहिं होयहैं तथा वेदादिकनकी रीति छोडके मनमाने थोडे-थोडे ज्ञान-कर्म-भक्ति करवेंसोंभी कछु फलसिद्धि नहिं होय है। जैसें वेदमें "चमसेनापः प्रणयेद्गोदोहनेन पशुकामः"। या श्रुतिमें पशुकी कामनावालो मनुष्य गायकी दोहनीमें जल लावे एसी विधि है। दोहनी में जल लावे की क्रिया यज्ञ के अन्तर्गत करिवेसु यजमानकों पशु रूप फल देवे है। यह बात लिखी है याकूं सुनकें कोईपुरुष वेदविधिकूं छोडके केवल गायकी दोहनीसूं जल लायके पशुकी प्राप्ति चाहे तौ कभी नहीं होय। किंतु वेदरीतिके अनुसार यज्ञमें जा ठिकाने जल लायवो लिख्योहै वा ठिकानें गायकी दोहनीसों जल लावे तबही पशुकी प्राप्ति होय। ऐसेही अपने अधिकारके अनुसार वेदशास्त्रनूके लिखे प्रमाण सांगोपांग करेभये ही ज्ञान-कर्म-भक्तिमार्ग अपने-अपने फलके देवे वारे हैं ॥२१॥ अभीके सबही मनुष्य कालके विपरीत पणेसूं पीढी दरपीढीसों सदाचारीन होरहेहैं तथा निषिद्धाचारमें तत्परहैं। तासों ज्ञानकर्मादिकके अधिकारी नहिंहै, क्योंकि-"आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः" आचारहीन मनुष्यकूं वेदभी नहिं पवित्र करे हैं। तासों भक्ति करके जो पुरुषकृष्णकी सेवा करे है वाकूं कलियुग फलदायक है। "कलौ तद्हरिकीर्तनात्" श्रीभागवत में लिख्यो है। कलियुगमें कीर्तनादिकभक्तिसों भगवत्प्राप्ति होयहै। यद्यपि जैसें ज्ञानके तथा कर्मके

अधिकारी अभीके जीव नहिंहैं तैसें भक्तिकेभी अधिकारी अभीके जीव नहिंहैं तथापि अनधिकारी जीवन कोंभी कृपाकरिकें मुक्ति करवेकेलिये परब्रह्म पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण प्रकटभयेहैं और अपने प्रमेय-बलसों अर्थात् अपनी अद्‌भुत सामर्थ्यसों अनधिकारी जीव व्रजके पशु-पक्षी गोप-गोपी आदिकन्कूंभी मुक्ति दीनी। तासों अधिकारी होय, अथवा अनधिकारी होय, कृष्णभक्ति सबजीवन्कूं अवश्य करनी चाहिये यह बात सिद्ध भई ॥२२॥ सब वेदवाक्यन्को तथा गीताजीके भगवद्वाक्यन्को अभिधावृत्तिकेद्वारा मुख्य यहही अर्थहोय है। और प्रकारको जो अर्थ है सो अपने अपने मतके आग्रहसों कियो है ॥२३॥ श्रीभागवत एकादश-स्कन्धमें भगवान् आज्ञा करेहैं "इत्यस्या-हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन" अर्थ या वेदवाणीको अभिप्राय मैंहीं जानूंहूं और कोई नहिं जानेहैं तासों गीताभागवतमें लिखेभये भगवान्के वाक्यन्के अनुसार वेदको अर्थ जे पंडित करेहैं वेही भागवत हैं, परमभगवदीय हैं, वेही यथार्थ कर्मके स्वरूपकूं जानेहैं। जे विद्वान् गीता-भागवतानुसार वेदोक्त कर्म करेहैं तथा वेही पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं, जे विद्वान् गीता-भागवतानुसार वेदोक्त कर्म करेहैं तथा वेही पूर्ण ब्रह्मज्ञानी हैं, जे विद्वान गीता-भागवतानुसार वेदोक्त ब्रह्मस्वरूपकूं जाने हैं ॥२४॥

श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञाकरेंहैं श्रीभागवत तथा श्रीगीता

पहलेसोंही विद्यमानहीहै फिर हमारे ग्रन्थ करवेकी आवश्यकता नहीं हती परन्तु अनेकमतनके प्रचार होयवेसों संदेहमें पडके दैवी जीवभी हरिकी सेवासों बहिर्मुख होयरहेहैं उन जीवनके संदेह दूर करके भगवान्‌की सेवामें प्रवृत्ति करायवेके लिये गीता भागवतको यथार्थ अभिप्राय समुझायवेके अर्थ या ग्रन्थको प्रारम्भ करेंहैं॥२५॥



सत्प्रकरण

प्रपञ्चो भगवत्कार्यस्तद्रूपो माययाभवत्।।
तच्छक्त्याविद्यया त्वस्य जीवसंसार उच्यते।।२६।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं स्वप्रवृत्तिमुपपाद्य बाधकशास्त्राणां निवृत्त्यर्थं शास्त्रमारभते। प्रपञ्च इति।

प्रपञ्चमेव मिथ्येत्युक्त्वा शुद्धं भजनं वारयंति। तथान्ये जीवं व्यापकमुक्त्वा। अत उभयनिराकरणार्थं जीवजडयोः स्वरूपमुच्यते।

अयं प्रपञ्चो न प्राकृतः, नापि परमाणुजन्यः, नापि विवर्तात्मा नापि अदृष्टाद्वारा जातः, नापिअसतः सत्तारूपः किन्तु भगवत्कार्यः परकाष्ठापन्नवस्तुकृतिसाध्यः। तादृशोपि भगवद्रूपः। अन्यथा असतः सत्ता स्यात् सा चाग्रे वैनाशिकप्रक्रियानिराकरणे निराकरिष्यते। वैदिकस्त्वेतावानेव सिद्धान्तः। वैष्णवानुसारेण किंचित्साधन-मधिकमाह। माययाभवदिति। माया हि भगवतः शक्तिः सर्वभवनसामर्थ्यरूपा तत्रैव स्थिता यथा पुरुषस्य कर्मकरणादौ सामर्थ्यं तेन स्वसामर्थ्येनान्यानुपजीवनेन स्वात्मरूपं प्रपञ्चं कृतवानिति फलितं।

अत्र संसारप्रपंचयोः र्भेदाज्ञानात्केचिन्मुग्धा भवंति। तन्मोहनिराक-रणाय भेदं निरूपयति। अविद्ययेति। अविद्यापि तच्छक्तिः। मुख्यासु द्वादशशक्तिषु गणनात्, "श्रिया पुष्ट्या गिरा" इतिवाक्यात्। एवं सति "स वै नैव रेमे तस्मादएकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत्स हैतावानासेति" श्रुतौ रमणार्थमेव प्रपञ्चरूपेण

आविर्भावाक्ते: वैचित्र्यं वना तदसंभवो यतः, तस्माद् हेतोः, अस्य **भगवतः** शक्तयाअविद्यया जीवस्य संसार, उच्यते न तु जायते। **अभिम**त्यात्मकत्वात्। असत्त्वेनास्य गणनात्। अज्ञानं भ्रमः। **असदि**त्यादिशब्दा अहंममेतिरूपे संसार एव प्रवर्त्तंते नतु प्रपंचे इत्यर्थः। **तस्य** ब्रह्मात्मकत्वात्।

इदमुक्तं भवति वस्तुतस्तु "स वै नैव रेम" (ब्रहदा.उप.१/४/३) इत्यादिश्रुतिभ्यो रमणार्थमेव प्रपंचरूपेणाविर्भावात्तदन्तःपाति-पुरुषरूपेण तत्कृतसाधन-रूपेणाविर्भूय तत्फलरूपेण चाविर्भवन्क्रीड़ति भगवान्। एवं सति "अहम् एतत्कर्मकर्ता"-"एतञ्जनितं फलञ्च मम्" अहम् एतस्य भोक्ता" इत्यादिज्ञानानि स्वस्य स्वक्रियाया-स्तत्फलस्य चाब्रह्मत्वेन ज्ञानाद्भ्रमरूपाणीति मंतव्यं। सचाहंममात्म-कोऽविद्यया क्रियते। तत्वज्ञाने सत्युक्तरूपत्वज्ञानान्नि-वर्त्तते नतु प्रपंचो ब्रह्मात्मकत्वात्।

ननु प्रपंचात्मकस्य घटादेर्दंडमुद्गरात्मकेन तेन तिरोभाववत्तत्व-ज्ञानात्मकेन तेन संसारात्मकस्य तिरोभाव इत्यपि सुवचमतो नाविद्याहेतुकत्वमसत्वं वा संसारस्य वाच्यं प्रपंचमद्यपातित्वेन ब्रह्मात्मकत्वात्।

न च एवं संसारस्य नित्यतापत्त्या मुक्त्युच्छेदः इति वाच्यं। यत्कालावच्छेदेन यस्मिन् पुरुषे संसाररूपेणाविर्भावस्तदवच्छेदेन संसारित्वं तस्योच्यते। मुक्तिरूपेणाविर्भावे तु मुक्तत्वमित्युपपत्तेः। यथा घटादिषुआमदशायां श्यामरूपेणाविर्भावे तथा व्यवहारः। पक्वे रक्तत्वव्यवहारः तद्रूपेण आविर्भावात्, तथा इति।

न च अविद्यया बंधः इति श्रुत्यादिप्रसिद्धेर्नैवमिति वाच्यं दंडघटा-दिसमानयोगक्षेमत्वात्प्रसिद्धेः "एवं शुद्धौ ब्रह्मवादः सिद्धो भवति सन्मते।

अन्यस्याणोरपि प्राप्तौ मायापक्षो न किं भवेत् ।।

न भवेत् श्रुतितो हि प्रपंचस्य ब्रह्मतोच्यते तस्य नित्यत्वादाविर्भावितिरोभावावुच्येते तौ च विद्यमानस्यैव वस्तुनः संभवतो नासतः। सतश्च नासत्वं । तथाच संसारस्याविद्याहेतुकत्वमेव श्रुतिर्वदति न प्रपंचवद्ब्रह्मरूपताम् । प्रपंचरूपेणाविर्भावमुक्त्वा यदविद्यया संसारमाह। विद्यया तद्भावं चाहातः प्रपंचभिन्नत्वमवश्यमूरीकार्यम् । तथा सत्यसत्यत्वमेव संपद्यते संसारस्य ।

यच्चोक्तं दंडमुद्गरघटादि-समानयोगक्षेमत्व मविद्याविद्याकृतबंधमोक्षयोरिति तत्राप्युच्यते स्यादेवं यदि प्रपंचमध्यपातित्वं स्यात्संसारस्य नचैवं कारणभेदात्। नहि यौक्तिकमदिं शास्त्र किंतु श्रौतमित्यास्तिकैस्तथैव मंतव्यमिति

अस्य स्वरूपं ज्ञानपर्यंतमेव तिष्ठतीति वक्तुमाह ।।२६।।

ब्रजभाषाटीका

अब कितनेक मतवादी जगत्कूँ मिथ्या कहकें भगवद्भक्तिको निवारण करेंहैं । अर्थात् जैसें स्वप्नके पदार्थनसों सेवा नहिं करसकेहैं ऐसेंही जगत्के पदार्थभी स्वप्नके पदार्थन्के समान झूठे हैं । इनसोंभी भगवत्सेवा नहिं होय सके हैं। ये उनको अभिप्राय है। कितनेक मतवादी जीवकूँ व्यापक बतायके भगवत्सेवासों विमुख करें हैं । अर्थात् जीव सर्व ठिकानें विद्यमान है और जीव है सोही ब्रह्म है तो जीव कौनकी सेवा करे ! या रीतिसों मोह करावेंहैं, इन दोनों मतनकूं दूर करवे के लिये जडपदार्थ तथा जीवको यथार्थ स्वरूप वर्णन करें हैं ।

तहां सांख्य, पातञ्जल तथा वेदशास्त्रकर्ता जगत्कूं प्रकृतिसों बन्यो मानें हैं। और गौतम, कणाद, जैमिनि ऋषि जगत्कूं परमाणुको बन्यो मानें हैं। तथा मायावादी जगत्कूं विवर्त्तरूप मानें हैं, जैसे शुक्तिका रजतको विवर्त है वेसे। अर्थात् जैसे छीपमें चांदीको धोका होजायहै तब छीपही चांदी दीखेहै ऐसेही अनादि वासनासों जीवकों शुद्धब्रह्ममें जगत्को धोका होरह्यो है तासों शुद्ध-ब्रह्महही जगत्रूपसों भासमान होवे हैं। तथा कणाद, गौतम, जैमिनि, या जगत्के प्रति अदृष्टकूं निमित्त मानेंहैं। सांख्यवादी या जगत् के प्रति स्वभावकूं निमित्त मानें हैं। मायावादी वासनाकूं या जगत्के प्रति निमित्त मानें हैं और बौद्धमतवारे जैसे बादल पहलेसों नहिं होय है फिर अकस्मात् हो जाय है ऐसेंही जगत् असतः सत्तारूप है अर्थात् पहलें नहीं हतो शून्य हतो फिर अकस्मात् जगत् होगयो ऐसे माने हैं। परन्तु यारीतिको जगत् नहीं है।

जगत् भगवान्को कार्य है "तदात्मानूँस्वयमकुरुत" इत्यादि श्रुतिन्के अनुसार परब्रह्मको अविकृत परिणाम ये जगत् है अर्थात् परब्रह्म पुरुषोत्तमही अनेक प्रकारसों लीला करवेके लिये (प्रपञ्च) जगत्रूप होय रहे हैं। आपही याके करवेवारे हैं। वेदको यही सिद्धान्त है और श्रीमद्भागवत तथा वैष्णव शास्त्र श्रीनारदपंचरात्र को भी ये ही सिद्धान्त है कि भगवान्में सर्वभवन-सामर्थ्य है अर्थात् पुरुषोत्तममें ऐसी अद्भुत सामर्थ्य है के जैसो रूप धारणकरनों चाहें वैसेही

होजावें हैं। वा सामर्थ्यसों आप जगत्‌रूप भयेहैं, वाही सामर्थ्यसों माया कहे हैं। वाको वर्णन वेदमें "परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञान बलक्रिया च" या मुंडक श्रुति में है।

यहां कितनेक वादी संसार तथा जगत्‌कूं एक समुझिकें जगत्‌कूंभी मिथ्या मानेंहैं यह उनकी भूल है। क्योंकि प्रपंच तथा जगत् ये दोनों जड़ जीव इनके नाम हैं और जगत्‌के उपादान कारण भगवान् हैं। और जैसें मनुष्य अपनी सामर्थ्यसों काम करेंहैं वह मनुष्यकी सामर्थ्य मनुष्यसों जुदा नहिंहै ऐसेंही भगवान् अपनी सर्व भवन सामर्थ्यसों जगत् बनावें हैं वह सामर्थ्य भगवान्‌सों जुदी नहिंहै, वाही सामर्थ्यसों माया कहेंहैं, विद्या और अविद्या ये दोनों वा मायाकी शक्ति है और संसार अहंताममताको नाम है। संसारको उपादानकारण कोई नहिंहै। अविद्या संसारको कारण है। संसार अज्ञानरूप है। मिथ्या है। प्रपंच सत्य है, अविद्याको कियो भय ज्यो संसार है सो जीवके अर्थ ही कियोजाय है।

श्रीभगवान्‌की अनन्तसामर्थ्य है, गणना नहिं होयसकेहै। परन्तु मुख्य १२ द्वादश सामर्थ्य हैं उनको वर्णन दशमपूर्वार्द्धमें "श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया॥ विद्ययाविद्यया शक्तया मायया च निषेवितम्"॥ अर्थ-श्री पुष्टि गिरा कांति कीर्त्ति तुष्टी इला ऊर्ज्जा विद्या अविद्या माया

ह्लादिनी शक्ति इन द्वादश सामर्थ्यनकूंही द्वादश शक्ति कहैं हैं। इनमेंही अविद्याशक्ति तथा मायाशक्ति को वर्णनहै॥२६॥

संसारस्य लयो मुक्तौ न प्रपञ्चस्य कर्हिचित्॥
कृष्णस्यात्मरतौ त्वस्यलयः सर्वसुखावहः॥२७॥
पंचपर्वा त्वविद्या हि जीवगा मायया कृता॥

तत्वदीपप्रकाशः

संसारस्य लयो मुक्तावित्युत्पत्तिप्रलयोर्भिन्नप्रकारत्वादुभयोर्भेदः। मुक्तयर्थं प्रपंचविलयाभावे कदापि विलयः स्यादित्याशंक्याह। कृष्णस्यात्मरताविति। यदा स्वरतीच्छा तदा प्रपंचस्वरूपं स्वस्मिन् विलाप्य रमते। नन्वेवं सति जीवब्रह्मणोर्मुक्तिप्रकारइवोक्त इति चेत्तत्राह। सर्वसुखावह इति। जीवानां तदा सुखार्थं प्रलयं करोति यथा रात्रिम्।

एवं भगवदिच्छां प्रपंचजननप्रलयकरणत्वेन निरूप्य जीवाना-मुत्पत्तिपूर्वकं मोक्षं निरूपयितुमाह ॥२७॥ पंचपर्वेति।

जीवसंसारहेतुभूताऽविद्या पंचपर्वा तेन संसारः सर्वांशनिराकृतेन निराकृता भविष्यतीति तदर्थं भगवद्भजनं कर्त्तव्यमिति वक्तुं तां प्रथम मुक्तवान्। जीवमेव गच्छति न तु अंशान्तरं। तस्याः दुर्बलत्वायाह मायया कृता इति।

जीवस्वरूपनिरूपणार्थं ब्रह्मणः सकाशाद्विस्फुलिंगा-दिवदुद्भवं वक्तुं कारणी भूतब्रह्मस्वरूपमाह॥

ब्रजभाषाटीका

अहंता-ममतारूप जो संसार है जो जहाँ ताँई ज्ञान नहिं होयहै तहाँताई रहेहै, ज्ञान भयेसों जब जीव जीवन्मुक्त होजावेहै

तब अहंताममतारूप संसारको विलय होयजावेहै जगतको लय नहिं होय है जब भगवान्की आत्मरतीच्छा अर्थात् सोते भये मनुष्यके समान स्वरूपके भीतर रमण करवेकी इच्छा होवेहै तब अपनें बनाये भये जगत्कूँ अपने स्वरूपमें लीन करलेहैं, तब जे जीव मुक्त नहिं भयेहैं उनके अहंता-ममतारूप संसारको सर्वथा अभावतो नहीं होय है परन्तु अभिभव हो जाय है अर्थात् उनकी अहंता-ममता निर्बल होजाय दबजाय है तासों मुक्त अमुक्त सब जीवनूकों सुख देवेके अर्थ भगवान् प्रलय करेहैं ॥ २७ ॥ जीव के संसार की कारण अविद्याके पाँच पर्व हैं। मायानें जीवकेही विषे अविद्याकूँ धरदीनी है।

आकाशवद्व्यापकं हि ब्रह्म मायांशवेष्टितम् ॥ २८ ॥

सर्वतःपाणिपादान्तं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ २९ ॥

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म ह्यविभक्तं विभक्तिमत् ॥

बहुस्यां प्रजायेयेति वीक्षा तस्य ह्यभूत्सती ॥ ३० ॥

तदिच्छामात्रतस् तस्मादब्रह्मभूतांश चेतनाः ॥

सृष्ट्यादौ निर्गताः सर्वे निराकारास्तदिच्छया ॥ ३१ ॥

तत्वदीपप्रकाशः

आकाशवद् इति द्वाम्यां। लोकदृष्ट्या दृष्टान्तः ब्रह्मणो व्यापकत्वं बृहत्वात्। अन्यथा 'ब्रह्म' पदप्रयोगः न उपपद्यते।_आत्मरमणानंतरं तिरोहितं भवतीति मायया तादृशभावः, तेन वेष्टितं भवति ॥ २८ ॥

तस्य स्वरूपमाह। सर्वतः पाणिपादांतमिति। प्रमाणनिरूपणाय गीतावाक्यमुच्यते सर्वत्र प्रदेशे पाणयः पादाः अंता यस्य। गतिकृतिलक्षणे क्रिये सर्वत्र स्वेच्छया परिच्छेदावभानं चोक्तं। सर्वतोक्षिशिरोमुखमिति। ज्ञानप्राधान्यभोगाश्च सर्वत्रोक्ताः।

नामप्रपंचार्थमाह। सर्वतः श्रुतिमल्लोक इति।

सर्वतः श्रृणोतीत्यर्थः। एतादृशस्य परिच्छेदः संभविष्यतीत्यत आह। सर्वमावृत्य तिष्ठतीति। एते धर्माः प्रपंचोत्पत्त्यनंतरमेव स्पष्टा भवंति तथापि तेषां नित्यत्वख्यापनाय प्रथमतो वचनं॥२९॥

सर्वत्र परिच्छेदस्य प्रयोजनमाह अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्मेति।

अनन्तपदस्येममेवार्थं ज्ञापयितुं हि शब्दः। तर्हि खण्डशः स्यादित्याशंक्याह। अविभक्तमिति। अनंतमूर्तिष्वपि न परस्परं विभेदः केवल मिच्छया तावन्मात्र प्रकटनार्थं विभक्तिमत्।

एतत्स्वरूपमुक्त्वा ततः सृष्टिं वक्तुं तदिच्छां करणत्वेनाह। बहुस्यामिति।

अनेकत्वमुच्चनीचत्वं च भावयामास। भावना तस्य सतीविषयाऽव्यभिचारिणी।

ततो यज्जातं तदाह॥३०॥ तदिच्छामात्रतः इति। तस्मादेव, ब्रह्मभूताः नतु योगबलेनाविर्भूताः। अंशाः साकाराः सूक्ष्मपरिच्छेदाश्चेतनाश्चित्प्रधानाः सर्वे असंख्याताः। सृष्ट्यादौ प्रथमसृष्टौ ततः साकारा भगवद्रुपा अपि उच्चनीचभावेच्छया निर्गता इति निराकारा जाताः। निर्गमने दृष्टांतमाह॥३१॥

व्रजभाषाटीका

जगत्को कारण जो ब्रह्म है ताके स्वरूपको वर्णनकरेंहैं। अतएव ब्रह्म है सो आकाशकीतरह सब ठिकाने व्यापकहै आत्मरमण करें पीछे जब जगतूरूप होयके क्रीडा करवेकी

इच्छा होयहै तब भगवान् मायारूप धारणकरेंहैं और मायारूप करके अपनी व्यापकताकूँ छिपायलेहैं। वा छिपीभई व्यापकताकूँ ब्रह्मज्ञानी देखसकेंहैं॥२८॥

जा ब्रह्मसुं जीव निःसृत होवे है वाको स्वरूप कहे हैं। सब ठिकाने आपके श्रीहस्त तथा चरणारविंद और उनके अन्त (समग्रता) विद्यमान हैं। वासो सबही ठिकाने भगवान् गमन करेंहैं तथा कार्य करेंहैं और अपनी इच्छासों अपनें स्वरूपकी हद्दभी दिखावेंहैं यह बातभी सिद्धभई। तथा सर्वत्र ब्रह्म के नेत्र, मस्तक, तथा मुखारविंदभी विद्यमानहैं । यासों सब पदार्थन् को भगवानकूँ ज्ञानहै तथा सबठिकानें आपको उत्तमही स्वरूपहै और सर्वत्र आप भोग करते रहेहैं यह बात सिद्धभई।

सब ठिकाने आपके श्रीकर्ण विद्यमानहैं, सब ठिकाने सुनते रहेहैं। ये आपके अनन्तधर्म अर्थात् अनेकगुण प्रलयमेंभी रहेहैं परन्तु जगत् बनाये पीछेंही अच्छी-रीतिसों प्रकट होवेहैं॥२९॥

अनन्तमूर्ति अनन्तरूपसों प्रकटहोयवेकेलिये भगवान्ने अपने (व्यापकरूप) अपरिमितरूपमें (परिच्छेद) परिणाम प्रगट कियोहै । भगवान् अनेकरूपसों प्रकट होयहैं तथापि उनरूपनमें परस्पर भेद नहींहै केवल इच्छासों जितनो बडो स्वरूप दिखानो चाहियेहै उतनो बडोही रूप दिखायवेकेलियें भगवान् विभागवाले हैं॥३०॥

भगवान्‌की इच्छा बहुत प्रकारसों प्रकट होयवेकी इच्छा भई तब भगवान्‌के स्वरूपसों ऊंचे नीचे भावसों प्रकट होयवे कि इच्छा करिके ब्रह्मरूप बहुत छोटे चेतनरूप-चैतन्यगुणवाले साकार जीव प्रगट भये निकसें हैं तासों निराकार होयगयेहैं॥३१॥

विस्फुलिङ्गा इवाग्नेस्तु सदंशेन जडा अपि॥
आनंदांशस्वरूपेण सर्वान्तर्यामिरूपिणः॥३२॥

तत्वदीपप्रकाशः

विस्फुलिङ्गा इवाग्नेरिति। "यथाग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिङ्गा व्युच्चरंति" इति श्रुतिः। एवं जीवोद्गममुक्त्वा जडोद्गममाह। सदंशेनेति। सत्यप्राधान्येन।

अन्तर्याम्युद्गममाह। आनंदांशस्वरूपेणिति।

यथा जीवानां नानात्वं तथाअन्तर्यामिणामप्येकस्मिन्हृदये हंसरूपेणोभय-प्रवेशात्। भेदस्तु जीवेपि नास्तीति न कापि अनुपपत्तिः॥३२॥

ब्रजभाषाटीका

जैसे अग्निसों अग्निके कण निकलेंहैं याही प्रकार ब्रह्मके चित्‌अंशसों जीव निकसें हैं, ऐसेही ब्रह्मके सत्‌अंशसों जड निकलेंहैं ॥३९॥ ब्रह्मके आनंदांशसों अंतर्यामी निकलेंहैं। जैसे जीव अनेक हैं वेसे ही अंतर्यामीभी अनेकहैं । सबकेही हृदयमें एक जीव और एक अन्तर्यामी रहेंहैं। कदाचित् कहोगे "ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशेऽर्जुन तिष्ठति" या गीतावाक्यसोंतो एकही अन्तर्यामी सबके हृदयमें विराजेहैं यह बात मालूम पडे है ताको उत्तर-या गीतावाक्यमें जो एकवचन है सो ब्रह्मके

अभिप्रायसों है, अर्थात् अनेक अन्तर्यामीरूप होयकें सबके हृदयमें विराजमान ईश्वर एकहीहै यह जतायवेकेलिये ईश्वरः यह एकवचनहै। अनेक अन्तर्यामी होंयगे तो अनेक ब्रह्म माननें पड़ेंगे और वेदमें ते एकही ब्रह्म मान्यो है तासों विरोध आवेगो ऐसी शंकाभी नहीं करनी क्योंकि जैसें अनेक जीवनके साथ ब्रह्मको अभेद है याही प्रकार अनेक अन्तर्यामिनके साथभी ब्रह्मको अभेदहीहै तासों अनेक ब्रह्म नहिं मानने पडेंगे। एकही ब्रह्म अनेक अन्तर्यामीरूप तथा अनेक जीवरूप तथा अनेक जडरूप होयके प्रगट हो रह्यो है यह ही वैदिक सिद्धान्तहै॥३२॥

सच्चिदानन्दरूपेषु पूर्वयोरन्यलीनता॥
अतएव निराकारौपूर्वावानन्दलोपतः॥३३॥

जडो जीवोन्तरात्मेति व्यवहारस्त्रिधा मतः॥
विद्याऽविद्ये: हरेः शक्ती माययैव विनिर्मिते॥३४॥

तत्वदीपप्रकाशः

त्रैविध्येहेतुमाह। सच्चिदानंद रूपेष्विति।

सति चिदानंदरूपयोर्धर्मयोस्तिरोभावः। चित्यानंदस्य आनंदांशतिरोभावस्यापि ज्ञापकमाह। अतएव निराकाराविति। भगवदाकारश्चुर्भुजत्वादिराकारशब्देनोच्यते। लोपस्तिरोभावः।

एवं स्वरूपे वैजात्यमुक्त्वा नामतोपि वैजात्यमाहुः॥३३॥जड इति।

सर्वस्यापि भगवत्वे जडादिपदप्रयोगो व्यवहारः। एवं त्रैविध्यमुपपाद्य चिदंशानां जीवानां संसारप्रकारमाह। विद्याविद्ये इति।

मोक्षोप्येकः। सर्गइति विद्याया अपि निरूपणं। आत्मनः स्वरूपलाभो विद्यया। देहलाभोऽविद्ययेति उभयो जीवधर्मत्वं व्यावर्तयति।

हरेःशक्ती इति। तेन भगवदिच्छैव तयोराविर्भावतिरोभाव-योर्हेतुरित्युक्तं। अनयोर्मायाधीनत्वमाह। माययैव विनिर्मिते इति। तेन मामेव ये प्रपद्यंते इति वाक्याद्। भक्तौ सत्यामविद्यादि निवर्तते विद्यादि। अन्यथा नित्यमुक्तया न स्यात्॥३४॥

व्रजभाषाटीका

जैसें तेज दो प्रकारको है एकतो धर्मिरूप तेज जैसें दिया एक धर्मरूप तेज, जैसें दियाको प्रकाश अर्थात् उजाला ऐसेंही सत्-चित्-आनंद दो प्रकारकेहैं एकतो धर्मीरूप सत्-चित्-आनंदहै और एक धर्मरूप सत् चित् आनंद है, जहां जडमें धर्मीरूप चित् आनंद छिपरहेहैं , और जीवमें धर्मरूप आनंद छिपरह्यो है, अन्तर्यामिमें तीनों धर्म प्रकट हैं, वास्तवमें तीनों भगवद्रूप हैं॥३३॥ उनमें जड जीवअन्तर्यामी इन शब्दनको प्रयोग व्यवहाररूप है। जीवनकुं संसार होयवेको प्रकार दिखावेहैं। विद्येति।

विद्या और अविद्या ये दोनों भगवान्‌की शक्ति हैं, मायाद्वारा प्रकटभई हैं, यासों भगवान्नें मायाकेही आधीन करिराखीहैं। भगवान्‌की इच्छाकेही आधीन अविद्याको प्रकटहोनो और छिपजानोहै। ऐसेही विद्याको (आविर्भाव) प्रकट-होनो और (तिरोभाव) छिपजानोभी भगवान्‌की इच्छाहीके आधीनहै। विद्या अविद्या ये दोनों जीवके धर्म

नहींहैं, देहकी प्राप्ति तथा जन्म मरण अविद्यासों होयहैं विद्यासों जीवको (मोक्ष) स्वरूपलाभ होयहै अर्थात् ऐश्वर्य वीर्य यश श्री ज्ञान वैराग्य ये छः गुण अविद्या के कारण छिप रहेहैं वेही विद्यासों पीछे जीवमें प्रकटहोजायहैं और भगवान्सों प्रकट होते समयमें जैसो याको स्वरूप हतो वैसोही स्वरूप होजायहै। याहीको नाम मुक्ति है। येभी एकप्रकारकी भगवान्की सृष्टिलीला है, जैसे खेलमें राजा कोई छूटे भये पुरुषकूँ बांध देवेहै कोई बंधेपुरुषकूं छोड देवेहै ये दोनोंकाम राजाकी क्रीडामेंही समुझेजावेंहैं। भगवान्की इच्छा साधनके द्वाराही मुक्तिदेवेकी है तासों मुक्तिके साधन वेदपुराणमें लिखेहैं ''मामेव ये प्रपद्यंते मायामेताम्तरंति ते'' अर्थ - भगवान् कहेंहैं मेरे शरण आयवेवारे जीव मायाकूँ तरजावेंहैं, भक्ति-सिद्ध होजावेहैं, तबतो जीवकी विद्या और अविद्या दोनों निवृत्त अर्थात् दूरहोयजाय हैं और जीव नित्यमुक्त होयजायहै क्योंकि भक्तिसों जीव मायाकूंभी तरजावेहै तब मायाके आधीन जो विद्या अविद्या हैं इनके निवृत्त होयवेमें कहा आश्चर्य है ॥३४॥

ते जीवस्यैव नान्यस्य दुःखित्वं चाप्यनीशता॥
स्वरूपाज्ञानमेकं हि पर्व देहेंद्रियासवः॥३५॥

अन्तःकरणमेषां हि चतुर्थाध्यास उच्यते॥
पंचपर्वा त्वविद्येयं यद्बद्धोयाति संसृतिम्॥३६॥

तत्वदीपप्रकाशः

ते उभे जीवरूपस्यैवांशस्य भवतः नान्यस्य जडांशस्यांतर्यामिणो वा। जीवस्यैव दुःखितत्वमनीशित्वं च। अविद्यायाः पंचपर्वाणि आह। स्वरूपाज्ञानमेकम् इति।

अंतःकरणाध्यासः प्राणाध्यास इंद्रियाध्यासो देहाध्यासः स्वरूपविस्मरणञ्चेति पंचपर्वाणि।

यस्यां सम्पूर्णायां जातायामन्यधर्मैर्बद्धो जन्म मरणे प्राप्नोतीत्यर्थः ॥३६॥

व्रजभाषाटीका

विद्या अविद्या ये दोनों जीवकेही बंधमोक्ष करिवेवारीहैं जड तथा अंतर्यामीके ऊपर इनको असर नहिं है। तासों जीवकूं अविद्यासोंही दुःख होयहै, तथा (निरंकुशता) दुराचारीपणो होय है। (विपरीत ज्ञान) उलटे ज्ञानको नाम अविद्या है। वो अविद्या दोप्रकारकी है एक तो समष्टिरूपा, दूसरी व्यष्टिरूपा, बहुतनको एक समझनो समष्टि कहावेहै, जैसे बहुत वृक्षनकों समूह सो वन ऐसो जाननो समष्टि है और वनकूं बहुतसे वृक्ष हैं ऐसो जाननो व्यष्टि है ऐसेंही सृष्टिके पहिले मायासों उत्पन्न भई जो समूहरूप अविद्याहै वो समष्टिरूप अविद्या है। वो भगवान्की शक्ति है। न्यारे-न्यारे जो पांच पर्व हैं सों व्यष्टिरूप अविद्या है वो जीवनकी अविद्या है।

पांच पर्वको स्वरूप दिखावेंहैं। जीवकूँ पहले महत्तत्व अहंकाररूप अन्तःकरणको संबन्ध भयो तब अविद्यासों

जीव है सो अन्तःकरणकूँ अपनो स्वरूप मानवेलाग्यो याहीको नाम अन्तः-करणाध्यास है। ये अविद्याको पहिलो पर्व है यासों जीवकूं मैं कर्ता हूं मैं भोग करूंहूं मैं जानू हूं इत्यादिक अभिमान होवे है। तापीछे अहंतत्वको दूसरो रूप जो प्राण है वाके साथ जीव को सम्बन्ध भयो। तब अविद्या के कारण जीव प्राणनकूं अपनो स्वरूप मानवे लग्यो याको नाम प्राणाध्यास है। ये अविद्याको दूसरो पर्व है यासों मैं भूखो हूँ, तृप्त हूँ इत्यादिक प्राण धर्मनूकूँ अपने मानवे लगे हैं। ता पीछें जीवको इंद्रियनके साथ संबन्ध भयो, इंद्रियनकूं अपने स्वरूप मानवे लग्यो, याको नाम इंद्रियाध्यास है ये अविद्याको तीसरो पर्व है। या करकें जीव है सो मैं सुलोचन हूं, मैं काणो हूं, इत्यादि इन्द्रियनके धर्मनूकूंभी अपने माने है ता पीछे या जीवको देहके साथ सम्बन्ध भयो तब देहकूँ अपनो स्वरूप मानवे लग्यो, याको नाम देहाध्यास है। या करिकें जीव है सों मैं दूबलो हूं, मैं मोटो हूं। इत्यादि देहके धर्मनकूँ अपने माने है। ये देहाध्यास अविद्याको चौथो पर्व है। ये चारों पर्व जब पूरे होय जावे हैं तब अंतःकरण प्राण इंद्रिय देह इनकूं जीव हे सो अपनो स्वरूप मानवे लग जावे हैं। अपनो भगवान्‌को अंश चेतनरूप जो जीवकों स्वरूपहै ताकूं भूल जावेहै याहीको नाम स्वरूपविस्मृति है यह अविद्याको पांचवों पर्व है। अविद्याके पांच पर्व जब जीवमें आय जावेंहैं तब यह जीव

अन्तःकरण प्राण इंद्रिय देह इनको गुणनकरकें बँधो भयो जन्म-मरणकूं पावे है। ज्या देहकूं जीव ''देह है सो मैंही हूं'' ऐसों माने है वो ही जीवको जन्म हैं। ये जीव अपने चेतनरूपकूं भूलके देहकूं अपनो स्वरूप मानेहैं, कोई कारण करिकें देहादिकनकूंभी भूल जावेहैं, वाहीकूं मरण कहेहैं॥३६॥

विद्ययाऽविद्यानाशेतु जीवो मुक्तो भविष्यति ॥
देहेन्द्रियासवः सर्वे निरध्यस्ता भवन्ति हि ॥३७॥
तथापि न प्रलीयंते जीवन्मुक्तगताः स्फुटम् ॥

तत्वदीपप्रकाशः

अविद्यां निरूप्य विद्यां निरूपयति। विद्ययेति।

निद्रावदविद्यापगमे न जीवस्य जन्म-मरणे। तदा तस्मिन् जन्मनि गृहीतानां देहादीनां विलयाभावमाह। देहेन्द्रियासव इति। अध्यास एव गच्छति न स्वरूपं प्रपंचमध्यपातात्॥३७॥ अध्यासाभावे स्थितिर्न स्यादित्या-शंक्याह। तथापि न प्रलीयन्ते इति स्वबुद्ध्या लीनवत् प्रतिभानेपि न सर्वेषां बुद्ध्या तथा प्रतिभानं।

देहादीनां स्थितौ सुप्तप्रतिबुद्धन्यायेन कदाचित्पुनरध्यासः स्यादतस्तेषां विलयप्रकारमाह।

व्रजभाषाटीका

विद्या (ज्ञान) करिके अविद्याको नाश (उपमर्द) होयहै अर्थात् अज्ञानसूं (अविद्या) नाम उलटो ज्ञान ज्यो होयरह्योहै सो दबजाय है। अविद्याको सर्वथा नाश नहिं होयहै येही ज्ञानिनको मोक्षहै। विद्या ज्ञान एकबातहै जब विद्यासों

अविद्या छिपजावेहै तब देहेंद्रिय प्राण अन्तःकरणमें अहंकार होयरहोहै सो छूट जायहै अर्थात् ज्ञान भये पीछे देहेन्द्रिय प्राण अंतःकरणकों अपने नहिं मानेंहैं ॥३७॥ परन्तु देहादिकको नाश नहिं होय है क्योंकि-देहादिकनकी तो भगवत्कार्य जगत्में गणना है जैसे मनुष्य जागे हैं तब नींद उडजावेहै ऐसेंही सतोगुण रजोगुण तमोगुणरूप मायाके सतोगुणसों प्रकट भई ज्यो विद्या है सो मायाके तमोगुणसों प्रकटभई अविद्याकूं दूरकरदेवेहै तब छोटेरूपसों अविद्या अन्तःकरण के भीतर रही आवेहै जैसें जागतेंही नींद बुद्धिमें जाय छिपेहै बहुत छोटेरूपसों बुद्धि में रहेहै तासों फिरभी वाके समयमें नींद आय जावेहैं ऐसेही जीवन्मुक्त ज्ञानी जीवको देहादिकनमेंसें अहंकार दूर होयगयोहै तासों देहादिक नहिं मालूम पड़ेहै परन्तु और मनुष्यकूं जीवन्मुक्तके देहादिक दीखेहैं यासों सूक्ष्मरीतिसों छिपोभयो अहंकार देहादिकमें कदाचित् फिर पीछो आयजाय तो फिर संसार में बँधके जन्म-मरणकूँ प्राप्तहोजाय याकेलिये देहादिकको लय होयवेको साधन आगेके श्लोकमें बतावें हैं॥

आसन्यस्य हरेर्वापि सेवया देवभावतः ॥३८॥
इन्द्रियाणां तथा स्वस्य ब्रह्मभावाल्लयो भवेत् ॥
आनन्दांशप्रकाशाद्धि ब्रह्मभावो भविष्यति ॥३९॥

तत्वदीपप्रकाशः

आसन्यस्येति। आसन्यसेवायमिंद्रियाणां देवतात्वमिति श्रुतिः।

"स वाचमेव प्रथमामत्यमुच्यते" इत्यादि। हरेः सेवया सर्वमिति भगवच्छास्त्रम् ॥३८॥

भगवतो मुखमग्निः। स्वस्य वागिन्द्रियमग्निश्चेद्भगवन्मुखत्वमापद्यते। एवं सर्वेषामाध्यात्मिकानामाधिदैविकत्वं तदा सङ्घातस्य लयः इत्यर्थः। स्वस्य जीवभावे स्थिते कदाचित्सङ्घातांतरं संपादयेदिति जीवस्य ब्रह्म भावमाह। स्वस्य ब्रह्मभावादिति। ब्रह्मभावप्रकारमाह। आनंदांशेति।

तिरोहितस्याविर्भावे ब्रह्मभावस्तथा जडेऽपि तत्र भगवदिच्छैव केवला प्रयोजिका ॥३९॥

व्रजभाषाटीका

देहेंद्रियादिकके लय होयवेकेलियें आसन्य-प्राणकी उपासना करनी। वेदमे लिख्यो है वाकेअनुसार उपासना करिवेसों इंद्रिय हैं सो अपने देवतारूप हो जाय हैं, वाणि अग्निरूप होजाय है, प्राणवायुरूप हो जाय हैं, नेत्र सूर्यरूप होजायहैं, कर्ण दिशारूप हो जाय हैं, मन चंद्रमारूप होजायहै, जिव्हा वरुणरूप होजाय है, नासिका अश्विनीकुमार रूप हो जाय हैं, हस्त इन्द्ररूप होजाय हैं, पाँव उपेंद्ररूप हो जाय हैं। या रीतिसों जब सब इंद्रिय अपने अपने आधिदैविक देवतारूप होयजावें हैं तब मृत्यु सों छूट जावेंहैं यहही देहादिकको लय होनो है। जो कार्यरूपकूं छोडके कारणरूप होजानो ही देहादिक को लय है।

आसन्यकी उपासनाको प्रकार वाजसनेयि-ब्राह्मणोपनिषत्के तृतीय अध्याय के तृतीय ब्राह्मणमें लिख्यो

है। आसन्यकी उपासनाकी वेदमें ऐसी महिमा लिखी है ताको कारण यह है कि आसन्य प्राण है सो सूत्ररूप है सूत्र है सो महत्तत्वको क्रियाशक्तिवारो दूसरो रूपहै महत्तत्व है सो भगवान्सों प्रकृतिरूपा मायामें उत्पन्न भयोहै तामें प्रमाण तृतीयस्कंधके २६ अध्यायमें "दैवात्क्षुभित-धर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्॥ गर्भमाधत्तसासूत महत्तत्वं हिरणमयम्॥" तासों महत्तत्व भगवान्को पुत्र है वासों ही इंद्रिय देहादिकनकी उत्पत्ति होयहै तासों महत्तत्वरूप आसन्यकी उपासनासों देहादिकको लय हो जाय है और भक्तके देहादिकनको लय तो हरिकी सेवासोंही हो जायहै क्योंकि भगवत्शास्त्र गीताभागवता-दिकको येही सिद्धान्त है भगवत्से-वासोंही सर्वसिद्ध होजाय है तामें प्रमाण भागवत एकादशस्कंधको श्लोक "यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्चयत् । सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभतेऽजसा । स्वर्गापवर्गं मद्धाम कथंचिद्यदि वाञ्छति" अर्थ उद्धवजीसों भगवान् आज्ञा करेहैं हेः उद्धव ! कर्म तप ज्ञान वैराग्य आदि साधन करिके जो फल सिद्ध होय है वह फल मेरे भक्तकूं भक्तिकरकेही मिलजावे हैं स्वर्ग मोक्ष मेरोलोक और ज्यो कछु चाहे सो सर्वपदार्थ भक्ति करकेंही मेरेभक्तकूं मिल जावें हैं तासों भगवद्भक्तके देह इंद्रिय आदिकनको लय भगवद्भक्तिकरकेंहि होय जाय है ॥३८॥

तात्पर्य यहहै अग्नि भगवान्को मुख है भगवद्भक्तकी वाणी भगवत्सेवासों अग्निरूप होजावे है। तब भगवान्के

मुखरूपहो जाय है ऐसेंही भक्तिकरकें प्राण वायुरूप होजाय है तब भगवान्के श्वासरूप हो जावे है मन चंद्रमारूप हो जावे है तब भगवान्के मनरूप होजावे है। याही रीतिसों भक्तिकरके सब इंद्रिय आधिदैविक देवतारूप हो जावे हैं तब देहकूं छोडकें भगवान्के अंगरूप हो जावे हैं तब देहादिसंघातको भी पंचमहाभूतन में लय हो जावे है।

आसन्यप्राणकी उपासनासों यद्यपि देहादिसंघात को लय हो जायवेहै परंतु आत्माको जीवभाव नहिं जाय है सो फेर कदाचित् जीवहै सो देहइंद्राया-दिककूं धारण करलेगो और फिर उनमें अहंकार उत्पन्न हो जायतो फिर बंध हो जाय और हरिसेवासों तो देहादिसंघातकोभी लय हो जावे और फिर आत्मा को जीवभाव दूरहोई ब्रह्मभाव होवे है तब आत्माको ब्रह्ममें लय हो जावे है फेरि वाकूं संसारजनित बंध कभी नहीं होय है ॥३९॥

सायुज्यं वान्यथा तस्मिन् उभयं हरिसेवया ॥
एवं कदाचिद् भगवान् साक्षात् सर्वं करोत्यजः ॥४०॥

कदाचित् पुरुषद्वारा कदाचित् पुनरन्यथा ॥
कदाचित् सर्वमात्मैव भवतीह जनार्दनः ॥४१॥

तत्वदीपप्रकाशः

अतः तस्या अनियतत्वात्। सायुज्यं वा भवति। अन्यथा संघाते गच्छेत्। सायुज्य-ब्रह्मभावौ हरिसेवयैव भवतोनान्यसेवया।

एवम् एक प्रकारेण सृष्टिम् उक्त्वाउपसंहरति।

एवं कदाचिदिति। साक्षात्सर्वोत्पत्ति प्रकारोऽयम् ।

श्रुतौ नानाविधा सृष्टिप्रकाराः साक्षात्परंपराभेदेन ॥४०॥ तत्र सर्वेषां संग्रहार्थं सृष्ट्यन्तराणिआह। कदाचित्पुरुषद्वारेति।

पुराणेषु पुरुषद्वारा सृष्टिःप्रसिद्धा। पुरुषादीनां द्वारत्वमेव। अन्यथा चतुर्मूर्तिप्रकारेण। स प्रकारः पञ्चरात्रे प्रसिद्धः। एवं श्रुतिपुराणतन्त्रेषु सृष्टिमुक्त्वा "स आत्मानमेवावैदहं ब्रह्मास्मीति तस्मात्सर्वमभव" दित्यादिषु साक्षात्प्रपञ्चरूपता निरूपिता तामाह कदाचिदिति। इहेति सृष्टिभेदेषु। जनार्दनः इति। लीलार्थं जीवानां क्लेशमसहमानः। अस्मिन्पक्षे नानंदांशादेस्तिरोभावः ॥४१॥

व्रजभाषाटीका

जब जीवमें तिरोहित छिपो भयो आनंद प्रकट होजावेंहैं तब ब्रह्मरूप हो जावें है और व्यापक होजावें है जैसें अग्निके संबंधसों लोहको गोला भी अग्नि हो जावें है। तैसें व्यापक ब्रह्मरूप आत्माके संबंधसों देहमें छिपे भये चैतन्य आनन्द प्रकट हो जावें है तब जड देह भी ब्रह्मरूप होजावें है वा अवस्थामें देह-जीव दोनों ब्रह्मरूप रहे हैं। या रीतिको ब्रह्मभाव दुर्लभ है। जा जीवकूं स्वरूपानन्द देवेकेलिये ज्ञानीभक्त रूपसोंही सर्वदा स्थित राखनो चाहेहैं वाही जीवकूं एसों ब्रह्म भाव मिले है। या रीतिको ब्रह्मभाव देवेकी इच्छा नहिं होय और सायुज्य मुक्ति देवेकी इच्छा होय तो सायुज्य मुक्ति देवेंहैं। अर्थात् अलक कौस्तुभमणि वनमाला आदिरूप वा भक्तकूं बनायके अपने स्वरूपमें स्थित करलेहैं

ऐसीभी इच्छा नहिं होय तो कोई भक्तकूं अक्षरब्रह्मको सायुज्य देहैं । और जा जीवकूं इनमेंसों कछुभी फल देवेकी भगवान्की इच्छा नहिं होय तो वा जीवके हृदयमें मैं मुक्त हूं ऐसो अभिमान हो जावें है तब वह जीव भगवत्सेवाकूं छोड देवेंहै। तब वाके विषें आनंदभी प्रकट नहिं होय और बडे परिश्रमसों चढ्यो भयो फिर गिर पड़े है। पीछो संसारमें फँसजाय हे । या श्लोकको तात्पर्य यह है कि सायुज्य-ब्रह्मभाव ये दोनों फल भगवान्की इच्छाके ही आधीन हैं । और हरिसेवासोंही मिलेंहैं, आसन्य प्राणकी उपासनासों नहिं मिलें हैं । याको प्रमाण गीता को श्लोक है ''मां च योऽव्याभिचारेण भक्ति योगेन सेवते ॥ स गुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते'' अर्थ-हे अर्जुन ! अनन्यभक्ति करके जो मेरी सेवा करेहै वो जीव सतोगुण रजोगुण तमोगुणको उल्लंघन करके ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवेंहै।

ज्यो सृष्टि उत्पन्न होयवेको एकप्रकार पहलें कह्यौ है यासों याहि रीतिसों सृष्टि होयहै और रीतिसों नहिंहोय है ऐसें नहिं जाननों वेदमें सृष्टि प्रकट करवेके बहुतसे प्रकार दिखायेहैं साक्षात्सृष्टि करवेके बहुतसे प्रकार हैं तथा परंपरासृष्टि करवेकेभी वेदमें बहुतसे प्रकार हैं ।।४० ॥

कभी भगवान् अक्षर पुरुषके द्वारा सृष्टि करेंहैं। वो सृष्टि पुराणप्रसिद्ध है। भागवत के तृतीय स्कन्धमें वा सृष्टिको प्रकार विस्तारसों लिख्योहै।

कभी आप अपने स्वरूपसों आकाशकूं प्रकट करेहैं, आकाशसों वायु प्रकट करे हैं। वायुसों अग्नि अग्निसों जल, जलसों पृथ्वी, पृथ्वीसों अन्न, अन्नसों रस, रससों पुरुष, या रीतिसों उत्पत्ति तैत्तिरीयमें लिखेंहै।

कोई समयमें और रीतिसोंभी सृष्टि करेहैं। वासुदेव भगवान् जगत्के कारण हैं तिनसो 'संकर्षण' नामको जीव प्रकटभयो । वासों, 'प्रद्युम्न' नामको मन उत्पन्न भयो वासों 'अनिरुद्ध' रूप अहंकार प्रकट भयो । याको विस्तार नारदपंचरात्रमें वर्णन कियोहै।

कभी आप अविद्याकूँ दूर करकें स्वयं भगवान् जगत्रूप होजावें है। "जब ब्रह्मने अपने स्वरूपकों जान्यो कि 'मैं ब्रह्म हूं' तब ब्रह्मसों सब सृष्टि प्रकट होगई"। ये प्रकार पुरुषविध ब्राह्मणमें लिख्योहै। ये पुष्टिसृष्टि है। केवल लीलाकेलिये करी है। जब परमदयालु श्रीकृष्ण परमात्मा परब्रह्म जीवनको अनेकवार जन्म-मरणक्लेश नहीं सहसकेंहै तब जीवनकु सृष्टि में नहीं प्रकट करेहैं। स्वयं भगवान्ही-जड-जीव अन्तर्यामी होयकें क्रीडा करे हैं। या सृष्टिमें आनन्दको तथा चैतन्यको कोई पदार्थमें तिरोभाव नहिं रहे है। सबपदार्थनमें सत्-चित्-आनन्द ये तीनों प्रकट रहेंहैं ॥४१ ॥

महेन्द्रजालवत्सर्वं कदाचिन्माययासृजत् ॥
तदाज्ञानादयः सर्वे वार्तामात्रं न वस्तुतः ॥४२॥

वियदादि जगत्सृष्ट्वा तदाविश्यद्विरूपतः ॥
जीवान्तर्यामिभेदेन क्रीडतिस्म हरिः क्वचित् ॥४३॥
अचिंत्यानंतशक्तेस्तद्यदेतदुपपद्यते ॥
अतएव श्रुतौ भेदाः सृष्टेरुक्ता ह्यनेकधा ॥४४॥
यथाकथंचिन्माहात्म्यं तस्य सर्वत्र वर्ण्यते ॥
भजनस्यैव सिध्यर्थं तत्वमस्यादिकं तथा ॥४५॥

तत्वदीपप्रकाशः

स्वप्नादिसृष्टिसंग्रहार्थमाह। महेन्द्रजालवत्सर्वमिति।

मायया केवलया नतु स्वयं तत्र प्रविष्टः तत्सृष्टौ न कोपि पुरुषार्थ इत्याह। तदा ज्ञानादयः इति। संति ज्ञानादयः परं वार्तामात्रं नतु फलसाधकाः ॥४२॥

वैदिकीमपरामपि सृष्टिमाह। वियदादिइति।

आकाशं सृष्ट्वा तद्द्वारा वायुमित्यादि। अस्मिन्नपि पक्षे जडानां पूर्ववदेव व्यवस्था। जीवांतर्यामिभेदे भिन्नं प्रकारमाह। तदाविश्येति। पूर्वकल्पेषु जीवान्तर्यामिणोरप्रवेशः। अस्मिन्कल्पे प्रविष्टस्य जीवान्तर्यामिभावः इति। एवं षड्भेदानुक्त्वा षड्गुणैर्भगवतो लीलेयमित्याह। क्रीडतिस्मेति ॥४३॥

एकः कथमनेकधा सृष्टिं करोतीत्याशंक्याह अचिन्त्यानन्तशक्तेरिति।

अचिन्त्याः अनन्ताः शक्तयो यस्येति। यदेतत्सर्वमुक्तं तदुपपद्यते। अस्मिन्नर्थे श्रुतेस्तात्पर्यमाह। अतएवेति श्रुतौ नानाप्रकरणेषु सृष्टिभेदाः सहस्त्रशो निरूपिताः।

अनेकधासृष्टिकथनस्य प्रयोजनमाह। यथाकथंचिदिति।

वेदानां भगवन्माहात्म्यप्रति-पादकत्वम्। ''बंदिनस्तत्पराक्रमै-रितिवाक्यात्। तत्सृष्टिभेदकथनेन भवतीति सृष्टिभेदा निरूप्यंते। वस्तुतस्तु सृष्टिकर्तृत्वेपि न भगवतो माहात्म्यं महाराजाधिराजस्य चलितुं ज्ञानमिव। तथापि लोकप्रतीतौ तन्माहात्म्यं भवतीति यथाकथंचिद्वर्ण्यते। माहात्म्यज्ञानस्योपयोगमाह। भजनस्यैव सिध्यर्थमिति। भक्तिसिध्यर्थम्। भक्तेरंशद्वयमिति। द्वितीयांशमपि प्रतिपादयतीति तथा लक्ष्यते इत्यर्थः। द्वितीयांशमाह। तत्वमस्यादिकं तथा कथयति॥४५॥

व्रजभाषीटाका

कभी भगवान् केवल मायासोंही सृष्टि करवावेंहैं आप स्वयं वा सृष्टिमें प्रवेश नहिं करेंहैं। वो मायिक सृष्टि बहुत प्रकारकी है। सूतेभये पुरुषकों ज्यो नींद में हाथी-घोडा बड़े-बड़े नगर आदि अनेक पदार्थ दीखें है वे मायाकेही बने भये हैं। तथा काँचआदि पदार्थमें प्रतिबिंब दिखें हैं अर्थात् काँचके सामनें कोई चीजकूँ करी जावेहै तो काँचमें वैसीकी वैसी दूसरी चीज बन जावेहै वा दूसरी चीजकूँ मायाकी बनी माननो। ऐसेंही भगवान्के स्वरूप ज्यो घट-पटादिक सब जगत्के पदार्थहैं उनमें भगवान्सों न्यारोपनो मिथ्यापनो तथा निंदितपनो ग्लानि आदि भासमान होयहैं सोभी मायाके बनाये भयेहैं। जैसें सपेतभी कपडा हरे चसमासों हरो दीखेहै ऐसेंही मायाकी बनाई अन्तरासृष्टि, अर्थात् विषयतारूपा सृष्टि नेत्रआदि इन्द्रियनके तथा जगत्के पदार्थनके बीचमें आय खड़ी होयहै तब मायासृष्टिसों मिलेभये पदार्थनकोही

ग्रहण होय है। शुद्ध भगवद्रूपपदार्थन्को ग्रहण नहिं होवेहै। जैसे हरो चसमा बीचमें होय तब नेत्र सुद्ध सपेत वस्त्रकूँ नहिं देख सकेहै किंतु चसमाको हरोपनो वामें दीखेहै याही रीतिसों मायाकी अन्तरासृष्टि बीच में आय रही है तासों वा अन्तरासृष्टिको मिथ्यापणो तथा निंदितपणो भगवद्रूपजगत्मेंभी भासमान होवेहै। या मायासृष्टिको वर्णन भागवत एकादशस्कन्धमें "मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत्" या श्लोकमें तथा "न तं विदाथ यइमा जनान्यद्युष्मा-कमंतरा संबभूव" या यजुर्वेदके मंत्रमें कियोहै। ऐसेंही अंधकार प्रतिध्वनि झांईकी अवाज आकाशमें बादलके काले पीले लालरंग, जेबडा आदिमें साँप तथा आभास-प्रतिबिम्ब-विषयता आदि पदार्थन्की प्रतीति इत्यादि अनेकमायासृष्टिके भेद हैं। या सृष्टिमें ज्ञानादि वार्तामात्रके हैं, फलसाधक नहिं है। जैसे सुपनेके लाडु कहवैमात्रके होयहैं, उनसों तृप्ति नहिं होयहै। ऐसेही मायिकसृष्टिभी मिथ्या है। याही मिथ्यासृष्टिके वर्णनकरवेवारे वाक्यनको तात्पर्य नहिं समुझके कितनेक वादी ब्रह्मरूप जगत्कूँ मायिक तथा मिथ्या बतावेंहैं॥४२॥

कभी भगवान् साक्षात् अपने स्वरूपसों आकाश उत्पन्न करेंहैं। आकाशसों वायु उत्पन्न करेंहैं। पहिले जो क्रम कह्यो है वाके अनुसारही सृष्टि पैदा करेंहैं। वा सृष्टिमें और या सृष्टिमें इतनोही फेर है कि वामें भगवान्ने जीव

अन्तर्यामीरूप पहिले धारणकरके फिर अपने बनाये जगत्में प्रवेशकियो तथा यामें पहिले बिराजमान होयके पीछे जीव अन्तर्यामीरूप धारणकरेहैं। १ ऐश्वर्य २ वीर्य ३ यश ४ श्री ५ ज्ञान ६ वैराग्य ६ ये भगवान्के छः गुण हैं इन छः गुणन्करके भगवान् छः प्रकारकी सृष्टि क्रीडा करेंहैं। तासों मुख्य छः प्रकारकी सृष्टि है। परन्तु इनमेंसों एक-एक सृष्टिके अनेक भेद हैं। यासों अनेक भेद सृष्टिके वेदमें वर्णन कियेहैं॥४३॥ भगवान् एक हैं और अनेकप्रकारकी सृष्टि कैसे करते होंयगे यह संदेह नहिं रखनो क्योंकि भगवान्की अनन्त सामर्थ्य है अपनी छोटी बुद्धिमें नहिं आयसकेहैं यह बात (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूतये) या श्वेताश्वतरोपनिषद्-कीश्रुतिमें लिखी है। भगवान्की अचिंत्य अनन्त सामर्थ्य जतायवेके लियेही श्रुतिनमें अनेकप्रकरणमें हजारन् सृष्टिके भेद वर्णन करेहैं॥४४॥ भगवान्को माहात्म्य जतायवेके लिये सर्वठिकाणे वेदमें अनेकप्रकारकी सृष्टि लिखी है। जैसे बन्दीजन पराक्रम वर्णन करके राजाकी स्तुति करेंहैं ऐसे वेदभी नानाप्रकारकी सृष्टिको वर्णन करके भगवान्को माहात्म्य जतावेंहैं। वस्तुतस्तु ठीक-ठीक बिचार कियोजाय तो भगवान् अपनो माहात्म्य जतायवेकेलिये सृष्टि नहीं करेंहैं क्योंकि सृष्टि करनो भगवान्को सहज स्वभाव है। जैसे राजाधिराज सहज स्वभावसों ही सुन्दर चल जानेहैं वामें उनको कछु माहात्म्य नहिं है परंतु प्रजाके हृदयमें तो राजाकी

सुन्दरगति देखके माहात्म्य स्वतः ही बढेहै। ऐसेही विना परिश्रम इच्छामात्रसों क्षणभरमें क्रोडन ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर देवेहै परंतु जीव तो क्रोडजन्ममेंभी सृष्टि नहिं करसकेहै। तासों मनुष्यकी अपेक्षा सृष्टि करणो भगवान्को माहात्म्य है। याहीसों वेदमें अपनी सामर्थ्यके अनुसार जैसे तैसे सृष्टिको वर्णन करकें जीवनकूं भगवान्को माहात्म्य जतायोहै।

तात्पर्य यहहै कि वेदमेंभी भक्तिकोही वर्णन है।और माहात्म्य जानके स्नेह करवेसों भक्ति कहेंहैं। तहाँ भगवान्को माहात्म्य जतायवेकेलिये वेदमें सृष्टिको वर्णन है और भगवान्कूँ अपनी आत्मा समझके स्नेह करवेके लिये वेदमें "तत्वमसि" इत्यादि वाक्यन्में "हे जीव! तूँ ब्रह्म है" ऐसो उपदेश कीनो है। मतलब यह है कि यह मनुष्य आत्माके उपकार करिवेवारे जानके स्त्री-पुत्र- देह आदिमें प्रीति करेहैं। स्त्री-पुत्रादिकमें अपने मतलबकी प्रीति है तासों सोपाधि-सकाम प्रीति है। और अपनी आत्मामें जो प्रीतिहै, सो विना मतलब प्रीति है यह निष्काम निरुपाधि प्रीति कही जावे है। भगवान सब देहधारीन के आत्मा हैं यह बात "तत्वमसि" आदि वेद के वाक्यन्सों सिद्ध होयहे। तथा श्रीभागवतमेंभी लिखीहै "अहमात्मोद्धवामीषाम्" हे उद्धव! मैं सब देहधारीन्को आत्मा हूँ। तासों भगवान्कूँही अपने आत्मा समुझके भगवान्में निष्काम दृढ प्रीति करनी यहही वेदको निचोड़ है॥४५।

माहात्म्यज्ञानपूर्वस्तु सुदृढः सर्वतोधिकः ॥
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तयामुक्तिर्नचान्यथा ॥४६॥

तत्वदीप्रकाशः

भक्तिस्वरूपमाह। माहात्म्येति। स्नेहो भक्तिः। "रतिर्देवादिविषया-भाव इत्यभिधीयते"। रतिस्नेहो। देवत्वं माहात्म्यं तदात्मत्वेन ज्ञाते भवति तेन भजनार्थमेवात्मत्वेन निरूपणं माहात्म्यं चोच्यते। अन्यथा वाक्यद्वयं ब्रह्मप्रकरणे व्यर्थं स्यात् ब्रह्मस्वरूपज्ञानेनैव पुरुषार्थसिद्धेः तच्छाब्दज्ञान-मप्रयोजकम्। इदानींतनेषु व्यभिचारदर्शनात्।

साक्षात्कारस्तु ब्रह्माधीनः। प्रसन्नं सत्तदाविर्भवतीति लोकरीत्यावगम्यते। श्रुतिश्च पुरुषार्थपर्यवसानं कथयति। अतः स्वरूपज्ञानं विधाय तस्य पुरुषार्थत्वमुक्त्वा तदाविर्भावएव फलं सिध्यतीत्याविर्भावार्थं प्रेमसेवां निरूपयति। अव ज्ञानादिदोषाभावाय माहात्म्यं सुदृढस्नेहात्मत्वं चाह। तत्वमसीत्यत्र शास्त्रपर्यवसानमग्रे निराकरिष्यते।

एवं कियतीनां श्रुतीनामेकवाक्यतामुक्त्वा सर्वासामेकवाक्यतां वक्तुं भगवतो रूपाणां संग्रहश्लोका आह॥४६॥

व्रजभाषाटीका

जीवकी मुक्ति भक्ति करवेसोंही होवेंहै। भगवान्को माहात्म्य जानके सबसों अधिक दृढ स्नेह करनो भक्ति कहावेंहै, वाहीको नाम भाव है। "रतिर्देवादिविषया भाव इत्यभिधीयते" अर्थ -माहात्म्यके द्वारा यह देवता है ऐसो जानके ज्यो प्रेम करोजाय वासों भाव कहेंहैं। केवल या प्रकारके भावसोंही गोपी, गाय, पक्षी, मृग आदिकन्को भगवान्की प्राप्ति भईहै। निरूपाधिक स्नेह भगवान्कूँ

आत्मा समुझें बिना नहीं होयहै । तासों वेदमें ब्रह्मकूं अर्थात् भगवान्कूँ आत्मा मानके प्रेम करायवेके लियें "तत्वमसि इत्यादि" श्रुतिनमें "वो ब्रह्म तूं है" या रीतिको उपदेश कियो है। तहां कितनेक वादी कहेंहैं कि ब्रह्मज्ञान विना मुक्ति नहिं होयहै। तासों ब्रह्मज्ञान होयवेकेलिये "तत्वमसि" इत्यादि वाक्यन्में "जीव तूँ ब्रह्म है" एसो उपदेश दियोहै, ताको यह उत्तर है केवल उपदेशमात्रसोंही ब्रह्मको ज्ञान होयजातोहोय तो "तत्वमसि" अथवा "जीवो ब्रह्मैव" अर्थ-जीव है सो ब्रह्मही है एसो एकही वाक्य सब उपनिषदनमें होनो चाहिये ! याही वाक्यके उपदेशसों ब्रह्मको ज्ञान होजायगो ! फेर ब्रह्मसों सृष्टिकी उत्पत्तिको क्यों वर्णन कियो? वादीकी रीतिसों सृष्टिको वर्णन वृथा होय हैं। और दूसरो वा प्रश्नको यह उत्तर है कि "तूं ब्रह्म है" एसे शद्बमात्रके कहवेसों ब्रह्मके स्वरूपको ज्ञान नहिं होवेंहैं। क्योंकि अभीके मनुष्यन्में कोईकूँभी उपदेशके सुनतेही ब्रह्मको साक्षात्कार नहिं होवेहै तासों ब्रह्मको ज्ञान होनो ब्रह्मकेही आधीन है। कठवल्लीमें "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः" या श्रुतिमें जाकूँ बह्म अपने स्वरूपको ज्ञान करानो चाहेहै वाकूँही ब्रह्मको ज्ञान होवेहै यह बात लिखीहै। और जैसे लोकमें राजा प्रसन्न होय तब दर्शन देहै एसेंही भगवान् (ब्रह्म) जा जीवपें प्रसन्नहोय वाहीके आगें अपने स्वरूपकूं प्रकट करेहै। "तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्"

या श्रुतिमें भगवान्की प्रसन्नताहीसों भगवानकूं जीव देखें है यह बात खुलासा सों लिखी है। और भगवान् प्रसन्न होय एसो साधन (प्रेम सेवा) भक्तिही है, यासों वेदमेंभी भक्तिकोही निरूपण है। और ब्रह्ममें अज्ञानादिदोष नहिं है यह बात जतायवेके लियें माहात्म्य वर्णन कियोहै, स्नेह होयवेके लिये आत्मतत्वको वर्णन है॥४६॥

पंचात्मकः स भगवान् द्विषडात्मकोऽभूत्पं
चद्वयीशतसहस्रपरामितश्च॥
एकःसमोऽप्यखिलदोषसमुज्झितोऽपि सर्वत्र
पूर्णगुणकोऽपि बहूपमोऽभूत॥४७॥

तत्वदीपप्रकाशः

पंचात्मकः इति। अग्निहोत्रादिपञ्चात्मकः। तत्साधनदेशकालद्रव्य-कर्तृमंत्रात्मकस्त्रिविधमंत्रब्राह्मणोपनिषदात्मकः पञ्चप्राणभूताद्यात्मकश्च। तेनैतावन्निरूपिकाणां श्रुतीनामेकवाक्यता सिध्यति। अग्रेपि तथा देहे च पञ्चात्मकः। ध्यानार्थं प्रादेशमात्रः आश्रयार्थमंगुष्ठमात्रः। स्वामित्वार्थमक्षिस्थितः फलार्थं सर्वदेहस्थितः आनन्दमयः वैश्वानरः शिरसि प्रतिष्ठितः सर्वार्थ इति। तथा पंचकोशात्मकश्चोपासनार्थः। तावतापि सर्वासां नैकवाक्यतेत्यभिप्रेत्याह। द्विषडात्मकोभूदिति। द्वादशसूर्यात्मको मासात्मकः पुरुषात्मकोऽहीनात्मकोऽग्नयात्मकश्चेति। अन्येपि द्वादशधा भिन्ना ज्ञातव्याः।

ततोऽपि प्रकारान्तरमाह पंचद्वयीति। दिगात्मको देवात्मकः इंद्रियात्मकको लीलात्मकस्तथान्येपि दशात्मकाः स्वयमूह्या

अवतारादयः। ततोऽपि अपूर्तिरित्यधिकमाह। शतसहस्रपरामितश्चेति। चत्वारो भेदा उत्तरोत्तरमधिकाः अमिताः असंख्याताः विभूतिरूपाः सर्वे ज्ञातव्याः। एवं भगवतः सप्तधा रूपभेदाः। उक्तास्तेषु भगवान् भिन्नः इत्याशंक्याह। एक इति। सर्वेषु रूपेषुएक एव योगिवत्। प्रादेशांगुष्ठादिमात्रेषु न्यूनाधिकभावमाशंक्याह। समोपीति। क्वचिदन्यथा प्रतीतिमाशंक्याह।

अखिलदोषसमुज्झितोऽपीति। ऐश्वर्यादिगुणाः सर्वेषु रूपेषु पूर्णाः। तथा सति कथं वैलक्षण्यप्रतीतिस्त-त्राह। बहूपमोऽभूदिति। नरवत्, प्रादेशवत्, शांतवत्क्रूरवदति॥४७॥

ब्रजभाषाटीका

याप्रकार कितनीक श्रुतिनको भक्तिमें तात्पर्य दिखायके उपासनाके योग्य स्वरूपको जिन श्रुतिनमें वर्णन है उन श्रुतिनकोभी भक्तिमें तात्पर्य दिखायवेके लियें भगवान्के विभूतिरूपको वर्णन करेहैं। अग्निहोत्र, दर्शपौर्णमास, चातुर्मास्य, सोमयाग, ये पांच भगवान्को स्वरूप है। तथा यज्ञके साधन, देश, काल, मंत्र और कर्ता ये पाँच भगवान्को स्वरूप है, तथा ऋग्वेदके मंत्र, यजुर्वेदके मंत्र, सामवेदके मंत्र, ब्राह्मणभाग, उपनिषद्भाग, ये पाँच भी भगवान्को स्वरूप है। तथा प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, ये पाँच भगवान्को स्वरूप है। तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द ये पाँच तन्मात्रा हु भगवान्कोही रूप है। तथा देहमें भगवान्के पांच स्वरूप विराजेहैं। ध्यानकरवेकेलिये प्रादेशमात्र बारहअंगुलीको

स्वरूप हृदयमें बिराजेहै या स्वरूपको भागवत के द्वितीयस्कन्धमें वर्णनहै। आश्रयके अर्थ अंगुष्ठमात्र स्वरूपसों बिराजें हैं। या स्वरूपको काठकोपनिषदमें वर्णन है। कर्मफलको नियम करवेके लियें या जीवको स्वामी होयके नेत्रनमें विराजेंहैं। या स्वरूपको छांदोग्य उपनिषद्में वर्णनहै और सुख देवेकेलिये आखे देहमें आनन्दमय भगवान् विराजेंहैं। मस्तकमें भ्रुकुटिनासिकाकी संधिमें वैश्वानर भगवान् बिराजेंहैं। यास्वरूपको वर्णन छांदोग्य तथा जाबाल श्रुतिमें है। या रीतिसों देहमें पंचात्मक भगवान् बिराजेंहैं। तथा द्वादशसूर्यात्मक भगवान् हैं तथा बारहमहिना भगवान्कोही रूप है, तथा बारह अग्नि भगवान्को स्वरूप है। दशदिशा तथा दश लीला प्रभु को स्वरूप है तथा शतसहस्र अरु पर अमित असंख्यात भगवान्के विभूति स्वरूप हैं। इन रूपनमें भगवान् न्यारे न्यारे नहिं हैं, किन्तु एकही भगवान् इन अनेक रूपन्में विराजेंहैं। जैसे एक ही योगी अनेक शरीरनमें योगके प्रभावसों धसो रहतहै ऐसें एकही भगवान् अनेकरूपमें न्यारे न्यारे प्रतीत होय हैं। अलौकिक सामर्थ्यसों आप अपने स्वरूपन्में अभेद राखेंहैं, और आपके छोटे अगूँठा जितने स्वरूपमें न्यूनता नहीं समझनी तथा बारह अंगुलके स्वरूपमें अधिकता नहीं समझनी। छोटे बडे सब रूप में भगवान् समानही हैं, और जितनें आपके रूप हैं सब दोषरहित हैं। और सबही रूपनमें

ऐश्वर्य १ वीर्य २ यश ३ श्री ४ ज्ञान ५ वैराग्य ६ ये छः गुण पूरे विराजमान हैं। आपके रूपमें जो परस्पर विलक्षणता मालुम पडेहै सो आप क्रीडाकेलिये सबसों जुदे होजावेंहैं, विलक्षण होजावेंहैं और अविलक्षणभी रहें आवेहैं। अनेक रूपहोयकें सामिलभी रहे आवेंहैं। वेदमें भी लिखे है "समो नागेन समो मशकेन" अर्थ-आप अद्भुत सामर्थ्यसों हाथी के समान भी हैं और मच्छरके समान भी हैं, तीन लोकके भी समान हैं, तासों आप बहूपम हैं अर्थात् भगवान्में सब उपमा दे सकेहैं ॥४७॥

निर्दोषपूर्णगुणविग्रहआत्मतन्त्रो
निश्चेतनात्मकशरीरगुणैश्च हीनः ॥
आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादिः
सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मा ॥४८॥
तस्य ज्ञानद्धि कैवल्यमविद्याविनिवृत्तितः ॥
वैराग्यं सांख्ययोगौ च तपो भक्तिश्च केशवे ॥४९॥
पञ्चपर्वेति विद्येयं यया विद्वान्हरिं विशेत् ॥

तत्वदीपप्रकाशः

एवं विभूतिमुपपाद्य स्वरूपमुपपादयति। निर्दोषेति।

यादृशं मूलरूपं तादृशमेव सर्वमिति मंतव्यं । गुणाः शांतिज्ञानादयस्ते लोके दोषसहिता दृष्टाः। महतोपि यथा "ज्ञानं क्वचित् तत् न संगवर्जित" मिति। तथा तपः क्रोधसहितं। तथा धर्मो दयारहितः। तथा न भगवति किंतु निर्दोषाः पूर्णा गुणाः विग्रहरूपाः

यस्य विग्रह पदेन परस्परविरुद्धाअपि लोकदृष्टया भासन्ते इति ज्ञातव्यं। गुणाधीनत्वमाशंक्याह। आत्मतंत्र इति। देहेंद्रियादीनां कार्यप्रतीतेर्लोकवद्देहेंद्रियाणि भविष्यंतीत्याशंक्याह। निश्चेतनामत्केति। चकारात्तत्तद्धर्मैरपि हीनः। तर्हि कथमाकारप्रतीतिस्तत्राह। आनंदमात्रकरपादमुखोदरादिरिति। आनन्दोब्रह्मवादे आकारसमर्पकः। अतएव पुरुषेष्वपि सर्वांतर आनंदमयो निरूपितः। तद्वस्तु सर्वात्मकमिति वदन्नाह। सर्वत्र च त्रिविधभेदविवर्जितात्मेति। जीव-जडांतर्यामिषु सर्वत्रैव तदनुस्यूतं कारणत्वादिति। तस्य कारणता च निरूपिता ॥४८॥

एतन्निरूपणस्य प्रयोजनमाह। तस्य ज्ञानाद्धि कैवल्यमिति।

गुणोपसंहारन्यायेन श्लोकद्वयोक्तधर्मसयुक्तं ब्रह्म चेद्विजानीयात्तदा ब्रह्मविद्भवति ततः कैवल्यं संघातात्पृथग्भावं मोक्षं वा प्राप्नोति। तत्र दृष्टं द्वारमाह॥ अविद्याविनिवृत्तितः इति। पूर्वोक्तं ज्ञानमविद्यां निवर्तयत् मोक्षं साधयतीत्यर्थः। तज्ज्ञानमपरोक्षरूपमिति। विद्यायाः पंच पर्वाणि तत्साधनानिआह। वैराग्यमिति।

आदौ विषयवैतृष्ण्यम्। ततो नित्यानित्यवस्तुविवेकपूर्वकः सर्वपरित्यागः। तत एकांतेष्टांगयोगः। ततोविचारपूर्वकमालोचनं तपः, एकाग्रतया स्थितिर्वा। ततो निरंतर भावनया परमं प्रेम ॥४९॥

एवंसाधनसंपत्तौ पंचपर्वा विद्या संपद्यते। यया कृत्वा जातसाक्षात्कारस्तं प्रविशेदित्याह। यया विद्वान् हरिं विशेदिति ॥५०॥

व्रजभाषाटीका

मूलरूपको वर्णन करेंहैं। जैसो मूलरूपहै वैसोही ध्यान करनो। लोकमें जितने गुण हैं वितने सब दोषनके भरेहैं, जे ज्ञानी हैं वे संगरहित नहीं हैं, ज्यो तपस्वी है वो क्रोधवारो

है, ज्यो धर्मात्मा है वो दयावारो नहिं है, या रितिसों लोकमें सब गुण दोषसहित हैं। मूलरूप पुरुषोत्तममें शांति, ज्ञान, दया, शरणागतरक्षा, भक्तवत्सलता आदि अनेकगुण दोषरहित हैं, और जितनें गुण हैं वे सब पूरे हैं, परन्तु लौकिकदृष्टिसों विन गुणनूमें परस्परविरोध दीखें हैं, परन्तु वे सब एकरूप होरहेहैं। आप स्वतंत्र हैं, अपने गुणके आधीन नहिं हैं, देह इंद्रिय आदिकनूके कार्य आप करते प्रतीत होवें हैं परन्तु लौकिक देहइंद्रियादिक तथा उनके धर्म आपमें नहिं हैं। आनन्दके बनेभये आपके श्रीहस्त श्रीचरणारविंद आदि सब अंग हैं।

भेद तीन प्रकार के होवेंहैं (१) मनुष्य तथा पशुमें परस्पर भेद है ये विजातीय भेद है, मनुष्यनूमें ज्यो परस्पर भेद है ये सजातीय भेद है, (२) मनुष्यके अंगनमें जो परस्पर भेद है ये स्वगतभेद हैं, ये तीनों भेद भगवान्के स्वरूपमें नहिं हैं। आपको आनन्दमयरूप जड जीव अन्तर्यामीमें भररह्योहै याहीसों भगवान् सर्वात्मक हैं, सबके कारण हैं॥४८॥

तात्पर्य ये है की ब्रह्म निष्कल है, निरञ्जन है, इतनेमें जानवेसों पूरो ब्रह्मज्ञानी नहिं होयहै, ब्रह्मके थोडे स्वरूपको वो जाने है इतने जानवेसों वेदोक्तफल नहिं होयहै किंतु ऊपरके दोनों श्लोकनमें लिखेभये वेदोक्त सब गुण सहित ब्रह्मकूँ जब मनुष्य जानजावें है तब पूरो ब्रह्मज्ञानी होवेंहै। तब ही जीव कौ "कैवल्य" अर्थात् मोक्ष होवें है। अर्थात्

(ब्रह्मभाव) भगवान् परमस्वतंत्र है, इच्छा होयतो देहादिक संघातसों वा जीवकों न्यारो करदेहै, इच्छा होयतो देहादिकसों न्यारो करके जीवको मोक्ष अर्थात् ब्रह्मभाव करके लय कर देहै, या रीतिसों सबगुण सहित ब्रह्मको साक्षात् अनुभव है सो अविद्याकूँ दूरकरके मोक्ष करेंहै, परन्तु जहाँतांई विद्याके पांचपर्व नहीं सिद्धहोवेंहैं तहाँ तांई ब्रह्मको साक्षात् अनुभव नहिं होवें है, तासों पांचपर्वको वर्णन करेहैं। विद्याको पहलोपर्व १ वैराग्य है, इन्द्रियन्के विषयसुखमें तृष्णा नहिं राखनी यही वैराग्य है। नित्यअनित्यपदार्थको विचार करके सबनकूँ छोडदेनो याको नाम सांख्य है, ये विद्याको दूसरो २ पर्व है। अष्टांगयोग विद्याको तीसरो ३ पर्व है। विद्याको चतुर्थ पर्व तप ४ है। विचारपूर्वक ज्ञान सो अथवा चित्तको एक ठिकाने लगायकें स्थितरहवेसों 'तप' कहेंहैं। विद्याको पांचवो पर्व भक्ति ५ है। निरन्तर भावनाकरके भगवान्में परमप्रेम करनो यहहि भक्ति है॥४९॥ या पाँचपर्वा विद्या करके भगवान्को साक्षात् अनुभव होवेहै तब भगवान्में प्रवेश होवेंहै॥

सत्वसृष्टिप्रवृत्तानां दैवानां मुक्तियोग्यता॥५०॥
तीर्थादावपि या मुक्तिः कदाचित्कस्यचिद्भवेत्॥
कृष्णप्रसादयुक्तस्य नान्यस्येति विनिश्चियः॥५१॥
सेवकं कृपया कृष्णः कदाचिन्मोचयेत्क्वचित्॥
तन्मूलत्वात् स्तुतिस्तस्य क्षेत्रस्य विनिरूप्यते॥५२॥

तस्मात्सर्वं परित्यज्य दृढविश्वासतो हरिम्।।
भजेत श्रवणादिभ्यो यद्विद्यातो विमुच्यते।।५३।।

तत्वदीपप्रकाशः

अत्र स्वरूपयोग्यतारूपमधिकारमाह। सत्वेति।

ये सात्विकाः दैव्यां संपदि जाता विध्युपजीविनः सर्वदा तेषां मुक्तिर्भविष्यति अन्येषाम् इति ज्ञापितम्।।५०।।

अनेनैव प्रकारेण मुक्तिर्नान्येनेति वक्तुं देशादिषट्के तदंगे मुक्तिःभाक्ता इति आह। तीर्थादावपीति द्वाभ्यां।

काश्यादितीर्थेषु मुक्तिः प्रसिद्धा। "तत्रांते तारकं ब्रह्म व्याचष्टे" त्वादिवाक्यैः शुद्धानां ब्रह्मोपदेश इत्यलौकिकोपदेशसाधकत्वं न व्यभिचरति तदाह। कदाचित्कस्यचिद्भवेदिति। सर्वेषामेवोपदेशोऽस्तीति चेन्नेत्याह। कृष्णप्रसादयुक्तस्येति। प्रसन्नो भगवांस्तद्द्वारा मोचयति तीर्थादीनां माहात्म्यार्थम्। यथाऽजामिलो नाम्ना। अतः प्रसादार्थं प्रेमान्तानि कर्त्तव्यानि। ननु कदाचित्प्रेमरहितोऽपि तीर्थे सम्यक्प्रकारेण मुक्तिसूचकेन म्रियते इति चेत्तत्राह। नान्यस्येति। तस्यापि पूर्वमेव साधनसंपत्तिः सिद्धा वासनावशात्परं प्राकृतत्वं भगवदिच्छया तस्मात् न व्यभिचारः इत्यर्थः।।५१।।

तर्हि तीथदिः क्वोपयोग इति चेत्तत्राह। सेवकमिति।

सेवकमेव पूर्वं तथाभूतं तत्रापि कृपयैव तत्रापि कृष्णएव। कर्ता साधनं व्यापारश्चोक्तः। कालदेशावाह। कदाचित्क्वचिदिति। अनेन कालस्यापि ततएव प्रशंसेति ज्ञापितम्। स्तुतानि तीर्थादीनि भगवदंगत्वाद्दैयकृतविघ्ननाशकानि भवंतीति लोकप्रवृत्त्यर्थं मुक्तिसाधकानीत्युच्यंते। तत्र स्थित्वा शुद्धकाले साधनानि साधयेदिति।।५२।।

अतः केवलतीर्थाद्याश्रयं परित्यज्य यथा भगवति स्नेहो भवति तथा यत्नं कुर्यादित्याह। तस्मादिति।

हरिभजनेऽपि कदाचिन्मोक्षो न भवेदित्याशंकां परित्यज्य दृढविश्वासं कृत्वा श्रवणादिभ्यो हेतुभ्यः श्रवणादिभिर्भजेत्। ततो विमुच्यत एवेति पुनरुक्तम् ॥५३॥

व्रजभाषाटीका

अविद्याके पाचपर्वनमें जो भक्तिको वर्णन है वो भक्ति स्वतंत्र निष्कामभक्ति नहिंहै किन्तु सकाम प्रवाहिकी भक्ति है, मोक्षकी कामनाके लियें करीजावेंहै, मोक्ष देकें निवृत्ति होजावेंहै, विद्याके पांचपर्वनमें भक्तिको वर्णन कियो है ताको यह प्रयोजन है कि भक्तिसहित ज्ञानही निर्गुणमोक्षकों देंहै केवलज्ञानसोंतो सगुणमुक्तिही होवेंहै। या रीतिसों साधन करवेसों भी दैवीसंपत्में उत्पन्न भये सात्विक जीवनकीही मुक्ति होवेंहै, जे आसुर जीव हैं उनकी मुक्ति नहिंहोय है क्योंकि उनमें मुक्तिकी योग्यताही नहींहै। जैसें जा जमीनमें बीज नहींहोय वामें जल डारवेसोंभी कुछ नहिं होवेंहै। दूसरो दृष्टांत यह है जैसे (तेलयन्त्र) घाणी है सो तिलनमेंसोंही तेल निकाससकेंहै क्योंकि बालुरेतमेंसो तेल निकसवेकी योग्यता नहिं है, ऐसेही भगवान् सृष्टिकी आदिमेंही जिन जीवनमें भक्तिको अंकुर धरदेवेहैं वेही दैवीजीव हैं। उनकी ही भक्ति साधनकरवेसो बढजावेहै तब भगवत्प्राप्ति करायदेहै ॥५०॥ ज्ञानमार्गमेंभी भक्ति करकेही जीवनकी निर्गुणमुक्ति होवेहै, केवलज्ञानसों तो सगुणमुक्ति होवेंहै यह

दिखायवेके लियें ज्ञानमार्ग ऊपरके श्लोकनमें वर्णन कियोहै। ऐसेही काशीआदितीर्थभी भक्तिके अंग हैं तासों मुक्तिदेवेवारे कहेहैं, परन्तु भगवान्की भक्तिविना मुक्ति नहिं करसकेंहैं। तीर्थमें रहवेवारे जीवमात्रकी भक्तिके विना ज्यो मुक्ति होजाती होय तो तीर्थमें भूत प्रेत क्यों दीखें हैं ? तथा जो काशीजीमें मरवेसों सबकी मुक्ति होती होय तो काशीमाहात्म्यमें लिख्योहै, "काशीके पापी जीवनकों मरेंपीछें भैरव दंड देंहै," यह बात झुटी होयगी। तथा काशीके जीवनकूं मरेंपीछे शिवजी 'तारकब्रह्ममंत्र' को उपदेश देहैं यह लिख्यो सो वो अलौकिकमंत्रो-पदेशभी शिवजी सबनकूंही नहिं देहैं। कभी तीर्थादिकनसों शुद्धभये कोई जीवकूं अलौकिक उपदेश होजावेहै। जाके ऊपर श्रीकृष्णभगवान् प्रसन्न होयहैं वाही जीवकी काशी आदि तीर्थन्में अलौकिक उपदेशकेद्वारा मुक्तिकरेंहैं। जैसें नामको माहात्म्य बढायवेके लियें महापापी अजामिलकी 'नारायण' नामसोंही मुक्ति करदीनी ऐसेही तीर्थको माहात्म्य जतायवेके लिये जाकें ऊपर भगवान् प्रसन्नहोय वाकी तीर्थमें मुक्ति करेंहैं। तासों भगवान्के प्रसन्न होयवेके लिये प्रेमभक्ति करवेवारे साधन करनो ही योग्य है। कदाचित् प्रेमभक्ति विना कोई जीवकी मुक्ति तीर्थमें हो जाय तो जाननोंकी या जीवने भक्तिके साधन पूर्वजन्म में करलीने हैं, भगवान्की इच्छा करकें वासना के आधीन होय के संसार में आसक्तहतो ॥५१ ॥

तीर्थकी प्रशंसा करवायवेके लियें तीर्थतें अपनें भक्तकी भगवान् मुक्तिकरेंहैं ऐसेंही कालकी प्रशंसा करवायवेके लिये उत्तरायण आदि कालमें कृपाकरके भक्तकी मुक्तिकरेंहैं। जैसे दृढभक्त भीष्मपितामहकी मुक्तिकरके उत्तरायणकालको माहात्म्य बढायो, जिनतीर्थनूकी पुराणनूमें महिमा करीहै उन तीर्थनकूं भगवानूके अंग जाननो। वे तीर्थ भगवानूकी भक्ति बिगाडवेवारे दैत्यनके विघ्नकूँ दूरकरेंहैं तासोंही लोकमें तीर्थनूको प्रचार होयवेके लिये तीर्थ मुक्ति देवेवारे हैं ऐसें शास्त्रमें कह्योहै। यासों तीर्थमें निवासकरके शुद्धकालमें प्रेमभक्तिसाधनकूँ साधनो योग्यहै। कोई पुरुष भक्तिविना केवल तीर्थादिकनूमें रहवेसोंही मेरी मुक्ति होजायगी ऐसें समुझकें भक्ति करनों छोड देगो वाकि मुक्ति नहिं होयगी तासों जैसें भगवानूमें स्नेह होय ऐसो यत्न करनों।।५२।। अब मर्यादाभक्तिको वर्णन करेंहैं। भक्ति करें सोभी कदाचित् मेरी मुक्ति नहिंहोय ! ऐसो संदेह नहिं राखनों। वेदमें लिखेभये श्रवण, मनन, निदिध्यासन ये तीन साधनकरके इनके करवेसो भगवान् मेरी मुक्ति अवश्य करेंगे एसो दृढविश्वास होयजावेंहै। फेर गीताभागवतोक्त नवधाभक्ति निरन्तर करतेरहनो, ऐसें नवधाभक्ति करतें करतें स्नेहभक्ति जब होयजावेंहै तब अविद्यासों भी छूट जावेंहै, अर्थात् अविद्यासों छूटवेकेलियें विद्याप्राप्तिके अर्थ विद्याके पांच पर्वनको अभ्यास करनो यह बात पहली कही है। फेर

विद्यासो भी छूटके ब्रह्ममें प्रवेश होयवेकेलियें श्रवणादि नवधाभक्तिको अभ्यास निरन्तर करनों यहबात याश्लोकमें लिखी है। अब यह शंका होय है कि या प्रकार मर्यादाभक्तिकरकेभी मोक्ष हो जावेहै फिर (स्वतन्त्रभक्ति) अर्थात् प्रेमलक्षण पुष्टिभक्तिमें कहा अधिकता है? याको उत्तर आगेंके श्लोकमें लिखेंहैं ॥५३॥

ब्रह्मानंदे प्रविष्टानामात्मनैव सुखप्रमा॥
संघातस्य विलीनत्वाद् भक्तानां तु विशेषतः॥५४॥

सर्वौंद्रियैस्तथा चान्तःकरणैरात्मनापि हि॥
ब्रह्मभावात्तु भक्तानांगृहमेव विशिष्यते॥५५॥

मोहार्थशास्त्रकलिलं यदा बुद्धेर्विभिद्यते॥
तदा भागवते शास्त्रे विश्वासस्तेन सत्फलम्॥५६॥

तत्वदीप प्रकाशः

इदानीं कैमुक्तिकन्यायेन प्रेमभक्तेः फलमाह। ब्रह्मानंदे प्रविष्टानामिति द्वाभ्यां।

साधनं भक्तिर्मोक्षः साध्यः। तथापि साधनदशैवोत्तमा। तत्र हेतुर्यो विमुच्यते। स संघातं परित्यज्य ब्रह्मणि लीयते, ब्रह्मभावं वा प्राप्नोति। तस्य स्वरूपानंदः स्वरूपेण वा आनंदानुभवः। स्वतंत्रभक्तानां तु गोपिकादितुल्यानां सर्वेन्द्रियैस्तथांतःकरणैः स्वरूपेण चानंदानुभवः। अतो भक्तानां जीवन्मुक्त्यपेक्षया भगवत्कृपासहितगृहाश्रम एव विशिष्यते॥५५॥

ननु एवं सति साधनफलयोरुत्कृष्टत्वात्कथं सर्वोऽपि न भक्तिमार्गे प्रविशतीति चेत्तत्राह। मोहार्थशास्त्रकलिलमिति।

शास्त्राणि यानि भगवच्छास्त्रव्यतिरिक्तानि मोहार्थानि। तान्येव कलौ मानमर्हंति। अतस्तेषां दर्शनेन बुद्धौ कलिलमुत्पद्यते। तच्चेद्विभिद्यते भगवत्कृपया तदैव भागवते शास्त्रे विश्वासः। एतदुक्तं सर्वथा सत्यमिति। ततस्तदनुसारेण प्रवृत्तःसत्यं फलं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥५६॥

व्रजभाषाटीका

'भक्ति' नाम पुष्टिभक्तिकोभी है और मर्यादा-भक्तिकोभी है, यहही पुष्टिभक्तिके साथ मर्यादा-भक्ति को सजातीयपनोहै, याप्रकार पुष्टिभक्तिकी सजातीय होयवेंसों मर्यादाभक्तिकी साधनदशाभी मर्यादा मार्गीय फलदशासों उत्तम है, तब पुष्टिभक्तिकी साधनदशा तथा फलदशाकी अधिकताको कहा वर्णन करनों. "सोश्नुते सर्वान्कामान् सह ब्रह्मणा" इत्यादिश्रुतिके अनुसार भगवान् भक्तके आधीन होयकें पुष्टिमार्गीयभक्तकूं रसात्मकस्वरूपको पूर्ण अनुभव करावें हैं। तथा श्रीभागवतमें साधन प्रकरणें श्रीकृष्णचंद्र यशोदाजी के श्रीहस्त करके ऊखलसों भी कृपाकरके बँधगयें हैं तब शुकदेवजीनें राजासों आज्ञा करीहै "नेमं विरञ्चो न शिवो न श्रीरप्यंगसंश्रया, प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्रापविमुक्तिदात्" अर्थ-कर्मज्ञानभक्ति-मार्गके शिरोमणि ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदिकनकूं जो भगवान्की प्रसन्नता नहिं मिली सो यशोदाजी कूं प्राप्तभई। ऐसेंही व्रजभक्तनके कहेंसो बाल्यवस्थामें पीढा आदि उठाय लावनों, नृत्य करवे लगजानों इत्यादि अनेकचरित्र भक्ताधीन

होयकें करे। पुष्टिमार्गीयफलदशामें तो भगवान् भक्तके देहेन्द्रियादिकनमें अपनो आवेश करकें बाहिर प्रकटहोयकें सकल देहेन्द्रियनके द्वारा तथा आत्माके द्वारा भक्तनकूं रसरूप स्वरूपको पूर्ण अनुभव करायकेंभी आप उन भक्तनसों यहही कहेंहैं कि "में तुमारी भक्तिको बदला सहस्रवर्षकरकेंभी नहिं दे सकूँहूं।" जेसें गोपीनके प्रति भगवान्‌के वाक्य पञ्चाध्यायीमें "न पारयेहं निरवद्यसंयुजां स्वध्याय-कृत्यं विबुधायुषापिवः" इत्यादिक लिखे हें परन्तु ऐसी स्वतन्त्र पुष्टि भक्ति दुर्लभ है; तासो यहाँ-मुख्यफलको वर्णन मूलमें नहिं कियोहै, याको वर्णन विस्तार सुं सेवाफल ग्रन्थ के विवरणमें लिख्यो है।

मर्यादा मार्ग में तो मर्यादाभक्ति साधन है और मोक्ष साध्य है, जो मुक्त होवें हैं वे देहादिकनकूं छोडके अधिकारानुसार अक्षरब्रह्ममें अथवा पुरुषोत्तममें लीन होयहैं अथवा ब्रह्मभावकूं प्राप्त होवेंहैं, उनकूं केवल आत्माकरकेंहि स्वरूपके आनन्दको अनुभव होवेहै ॥५४॥

पुष्टि भक्तनकूं तो सर्व इंद्रिय, अन्तःकरण तथा आत्मा इन सब करिकें स्वरूपानन्दानुभव होवेहै, तासो जीवन्मुक्तकी अपेक्षा पुष्टिभक्तनको भगवत्सेवापरायण होयकें भगवत्कृपासहित गृहस्थाश्रमही उत्तम है, क्योंकी भगवान् उनभक्तनकूं सेव्यस्वरूप करिकेंहि देहेंद्रियान्तःकरणद्वारा स्वरूपानन्दको अनुभव करावेंहैं, जैसें पद्मनाभदासजी आदि

पुष्टिभक्तनकूं भयो है, ताहीसों "प्रतिकूले गृहं त्यजेत्" या वाक्यमें सेवाको विरोधि गृह होयतो वाको त्याग करनों लिख्योहै।

पुष्टिसेवाके तीन फल लिखे हैं, पहलो अलौकिक सामर्थ्य अर्थात् भगवान्के आवेशकरकें रसरूप पुरुषोत्तमके स्वरूपानन्दके अनुभव करवेकी पूर्ण योग्यता होजानो, दूसरो सायुज्य पुरुषोत्तममें लय अथवा आभूषणादिरूप होजानों, तीसरो सेवापयोगी देह अर्थात् देहेंद्रियादिरहित अक्षरब्रह्मरूप देहकी प्राप्ति बैकुंठादिकन्में होजानी, इन तीनों फलनको देनों भगवान्के आधीन है और ये तीनों फल उन जीवनकूं मिलेंहैं जे जीव पुष्टिसृष्टिके होवेंहैं, उन जीवनके लक्षण पुष्टिप्रवाह मर्यादाभेद ग्रंथमें लिखे हैं। कालकर्म-स्वभावकूं रोकवेवारे भगवान्के अनुग्रहको नाम पुष्टि कहेंहैं॥५५॥ जब पुष्टिमार्गीय स्वतन्त्रप्रेमलक्षणा भक्तिको साधन तथा फल सबमार्गन् के साधनफलसों अत्यन्त उत्तम है तो सबही मनुष्य या भक्तिमार्गमें क्यों नहिं प्रवृत्त होवेंहैं? ताको यह उत्तर है की भागवतशास्त्र, वेद, भगवत्गीतादिविना और जितने शास्त्र हैं वे सब मनुष्यन्कूं मोहक रायवेके लिये बनायेहैं, उनशास्त्रन्को कलियुगमें बडो मान है, उनके देखवेसों बुद्धि मलिन होजावे है। जब भगवान्की कृपासों बुद्धिको मल दूर होय तब भागवतशास्त्रमें विश्वास होय अर्थात् भागवतशास्त्रमें जो

कह्योहै सब साचो है ऐसी दृढता होय, फेर वाके अनुसार सदा वर्ताव राखें तब वाकूं साचो फल मिलेहै, अर्थात् इंद्रियनमें तथा अन्तःकरणमें आनंद प्रकट होवेहै।

सत्प्रकरण संपूर्ण भयोहै, यामें कितनेक वादी जगत्कूं मिथ्या मानके जगत्के बीचमें भगवान्की भक्तिभी आगई तासों वाकूंभी मिथ्या कहेंहैं उनकी शंकाको समाधान कियोहै ॥५६॥



चित्प्रकरण

जीवस्त्वाराग्रमात्रो हि गंधवद्व्यतिरेकवान्॥
व्यापकत्वश्रुतिस्तस्य भगवत्त्वेन युज्यते॥५७॥

तत्वदीपप्रकाश

एवं सत्प्रकरणमुक्तवा चित्प्रकरणमाह। जीवस्त्विति।

तुशद्बः प्रकरणभेदकः। जीवस्यादौ परिमाणमुच्यते। आराग्रमात्र इति।

"आराग्रमात्रो ह्यरोपि दृष्टः इति श्रुतेः। व्रीहेरग्रभागः आरः नन्वेतावाँश्चेत्कथं सर्वदेहव्यापिचैतन्योपलंभस्तत्राह। गंधवद्व्यतिरेकवानिति। विशेषेणातिरिच्यते इति व्यतिरेको द्रव्यापेक्षायाधिकदेशः। यथा गंधःपुष्पापेक्षयाधिकदेशं व्याप्नोति तथा चैतन्यगुणः सर्वदिहव्यापीत्यर्थः गन्धतः कमलादेरिव वा स्थूलगुणयुक्तः, नतु तदन्यथानुपपत्त्या तावत्परिमाणः।

वैदिके शास्त्रै वाचनिक्येव व्यवस्था। नाप्यवांतरपरिमाणेऽपि अनित्यता भवति। यथा भगवतः प्रादेशमात्रस्य अंगुष्ठमात्रस्य हंसाकृतिः तथा आराग्रमात्र एव हंसाकृतिः।

ननु "नित्यः सर्वगतः स्थाणुः" इति वाक्याद् व्यापको भविष्यतीत्याशंक्याह। व्यापकत्वश्रुतिस्तस्येति।

भगवदावेशे भगवद्धर्मव्यापकत्वादयस्तत्र श्रूयंते नतु जीवो व्यापकः॥५७॥

व्रजभाषाटीका

आगें चित्प्रकरणको प्रारंभ करेंहैं। या प्रकरणमें जीवन व्यापक है। सबठिकानें विद्यमान है, ये कैसें भक्ति करसकेंहै ऐसें कहवेवारे वादीकी शंका दूरकरवेके लिये जीवके धर्म कहेहैं।

जीव आराग्रमात्र है, अर्थात् छिलकासहित चांवलकी आगेंकी तीखी नोंखके बराबर जीवको स्वरूप है। जैसें फूल छोटो होयहै परन्तु वाको सुगन्ध गुण आखे वनमें फैलजावेंहैं ऐसेही जीवतो अणु है अर्थात् अत्यन्त छोटो है परन्तु याको (चैतन्यगुण) चेतनपणो जितनों बडो देह होवेंहै उतने बडे देहमें सब ठिकानें फैलजावेंहै, ये बात "व्यतिरेकगंधवत्" या व्याससूत्रमें लिखी है।

यहाँ कितनेंक जैनमतके एकदेशी ऐसें कहेंहैं कि आखे शरीरमें सबठिकानें चैतन्य मालुम पड़ेंहै तासों जितनो बडो देह होवेंहै वितनोंही बडो देहके भीतर जीव रहेंहै ऐसें माननों, ताको यह उत्तर है कि चैतन्यगुण आखे शरीरमें फैलजावेहै परन्तु जीव तो अणुमात्र होयहै। जो जीवकूं मध्यमपरिमाणवालो मानोंगे तो देहजितनों ही बडो जीव माननो पडेगो, तो देह जैसें अनित्य है ऐसें जीवकूंभी अनित्य माननो पडेगो। जो कदचित् जीवकूंभी अनित्य मानलोगे अर्थात् देहके साथही जीव बनजावेहै, देहकी साथही जीव मिटजावेंहैं, एसें कहोगे तो होतोभयो बालक भूख

मिटायवेकेलियें स्तन पीवेमें प्रवृत्त होवेंहै सो तुमारे मतके हिसाबसों नहिं बनसकेगो, क्योंकि वाकूं कहा याद कि "ऐसें स्तनपान कियोजावेंहै," तथा "स्तन पीवेंसों मेरी भूख मिटजायगी," और हमारे सिद्धान्तसों तो जीव अनेक देह धारण करतो आयोहै, तथा अनेकजन्ममें भूख मिटायवेके लियें स्तन पीतो आयो है वाकी यादहै, तासों वा अभ्याससों बालक याजन्ममेंभी स्तन पीवेमें प्रवृत्तहोजावेंहै। और प्रेतभूत अपने पहलेजन्मकीभी सब बात कहेंहैं तासोंभी मालुम पडेहै जीवको देहके साथ नाश नहिंहोयहै, जीव नित्य है, और देहजितनो बडोही जीवकूं मानोगे तो शरीर अनेक हैं, सबही शरीरनूमें कर्मके आधीन होयके जीवकूं जानोपडेहै तब हाथीकी देहके बराबरको हाथीको जीव चिंटीमें कैसें मायसकेंगो, और शरीरके साथही जीव छोटो-बडो होजावेंहै ऐसें कहोगे तो शरीरको जैसें नाश मानोंहो तैसें जीव कोभी नाश माननों पडेगो। जो कहोगे जीवमें छोटेपणो बडेपणो आदि सब परिमाण हैं तो यह बात लोकविरुद्ध है। जगत्में एकवस्तु को एकही परिणाम होवेहै, और जो जीवकूं शरीर जितनों ही बडो मानोगे तो जीवकूं अवयववालो माननोपडेगो। अवयववालो पदार्थ अनित्य होयहै ऐसे जीवभी अनित्य होयगो, ऐसे अनेक दूषण हैं। तासों शरीरके बराबर जीवकूं नहिं माननों, जीवकूं अणु जितनोंही माननों।

अब न्यायशास्त्रमें जीवकूं व्यापक मानेंहैं वाको खंडन करेंहैं। वादी कहेंहै अनेक पदार्थ जीवके भोगवेके लियें अनेक देशनमें उत्पन्नहोवेहैं, उनके उत्पन्न होयवेमें जीवको "अदृष्ट" अर्थात् धर्म अधर्महीकारण है, और धर्म अधर्म जीवात्मामें रहेंहैं तासों जहां जहां जीवके भोगवेके लियें पदार्थ उत्पन्नहोरहेंहैं वहां वहां धर्माधर्मसहित जीव विद्यमान है, अर्थात् "अदृष्ट" धर्माधर्मसहित जीवको संयोगही है जीवके भोगने योग्य पदार्थ बननेमें कारण है, और सबठिकाने जीवको संयोग रहनो जीवकूं व्यापक मानें विना नहिं बनसकेंहै, तासों जीवकूं व्यापक माननो।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करेंहैं जीवनकूँ व्यापक मानोंगे तो सबही जीव सब ठिकाने विद्यमान हैं तहाँ जितने मूर्तिवाले पदार्थ हैं उनसबके साथ सबजीवनको संयोगहै और सबहीके मन देह इन्द्रियनके साथ सबही जीवनको संयोग है ऐसो माननों पडेगो, तब तो सब जीवनकूं अदृष्ट करकें इकसारही सुखदुःख होनेंचाहिये ! सबही जीवनकूं सबही पदार्थन्को भोग होनो चाहिये ! परन्तु ऐसें नहिंहोवे है, जा जीवके जे नियम भोगहैं उनभोगन्कूं ही वह जीव भोगेंहै। जीवकूं व्यापक मानोंगे तो यह बात नहिं बन सकेगी। वादी कहेहैं व्यापकपदार्थके गुण जहाँ तहाँ असमवाणीकारण रहे हैं वहाँही रहेंहैं अर्थात जीव व्यापक है तासों कहा भयो। मन तो अणु जितने हैं, जाठिकाने मन जीवसों लगेहैं वाहीठिकाने

जीव पदार्थको मनकेद्वारा भोग करसकेंहै । सबही पदार्थको भोग नहिं कर सकेहैं। "श्रीआचार्यजी" आज्ञा करे हैं: ठीक जहाँ जहाँ मनको संयोग होरह्योहै वहाँके भोगनको तो अनुभव होनों चाहिये, जैसें 'देवदत्त'नामके मनुष्यने आम्रको भक्षण कियो तो वाकूं ऐसो ज्ञान होवेंहै कि "मैंने मुखसों आम्रफलको भक्षणकियो", ऐसेंही सबही जीवनकूँ यह अनुभव होनो चाहिये, हमने देवदत्तके शरीर करकें आम्रफलको भक्षण कियो क्योंकि जीव कूं व्यापक मानोंगे तो देवदत्तके जीवको देवदत्तके मनके साथ संयोग है, वाहीप्रकार सबही जीवको देवदत्तके मनके साथ संयोग है एसो माननों पडेगो, और जैसें एक मनुष्यकूं पावमें मेरे सुख है, मस्तकमें मेरे पीडा है ये ज्ञान होवेहै, वैसेही यज्ञदत्तके शरीरमें मेरे सुख हो रह्यो है, विष्णुमित्रके शरीरमें मोकूं दुःखहो रह्यो है ऐसो ज्ञान होनों चाहिये। याही रीति सबही जीव सर्वज्ञ होजानेंचाहिये। "विवादी" जा आत्माको जो शरीर है वा शरीरकरकेंही वो भोग करसकेंहै और शरीर करकें भोग नहिं करसकेंहै, क्योंकि वा आत्माको जो धर्मा-धर्मरूप अदृष्ट है सो वा आत्माको और शरीरमें भोगनहीं करवेदेवेंहै।

श्री आचार्यजी आज्ञा करे है : जब आत्मा और शरीरमें भोग नहिं कर सकेंहै तथा और शरीरनूंकें वृत्तान्तकूँ भी नहिं जानसकेंहै तब आत्माको सबठिकानें व्यापक माननो वृथाही

भयो। किन्तु देह जितनों बडोहोय उतनोंही बडो आत्मा माननोंपडेगो तबतो मध्यम परिमाणवालो होयवेंसों जैसें देह अनित्य है तैसें आत्माकूंभी अनित्य माननों पडेगो। जो आत्माकूं व्यापक तथा नित्य मानोंहो तो जैसे अपने शरीरसों अनेक पदार्थ भोग करेंहैं तैसें और शरीरन्सोंभी अनेकपदार्थको भोग माननोंपडेगो । तो तुमारे मतमें प्रत्यक्ष विरोध आयो, क्योंकि लोकमें जीव जितनें हैं वे सब अपनें अपनें शरीरकरकेही विषयभोग करतेदीखेंहैं, दूसरेके शरीरकरके विषयभोग करते नहिंदिखेंहैं। किञ्च देवदत्तके शरीरकरके जो आम्रभक्षणको अनुभव भयो है वाको यज्ञदत्तकूंभी "मैंने आम्रभक्षण कियो" ऐसो स्मरण रहनों चाहिये।

"विवादी" : जा ठिकानें अनुभव होय है वाही ठिकाने स्मरण होय है तासों देवदत्तके चाखेंभये आमको देवदत्तकूंही स्मरण होयगो यज्ञदत्तकूं नहिं होयसकेहै।

"श्रीआचार्यजी" आज्ञा करे है : जा ठिकानें अनुभव होय वाही ठिकानें स्मरण होय ऐसो नियम नहिं है। देखो ! रूपको अनुभव आँखसों होयहै, स्पर्शको अनुभव हाथसों होयहै, परन्तु "मैने कदंब देख्यो हतो, "मैने पीताम्बरको स्पर्श कर्योहतो", एसो स्मरण आँखकू तथा हाथकूं छोडके हृदयमें जाय होयहै, यामें "जो वस्तु मैंने हाथसों स्पर्शकरी"-"जो वस्तु मैंने आंखसों देखी, विनकूं में स्मरण

करूंहूं" या प्रकारको अनुव्यवसायही प्रमाणहै।

विवादी : एकदेहमें अनुभव ओर ठिकानें होय और स्मरण ओर ठिकानें होय ये बाततो बनभी सकेंहै परन्तु अनुभव ओर देहमें होय और स्मरण ओर देहमें होय ये बात नहिं बनसकेंहै, क्योंकि जादेहमें अनुभव होय वाही देहमें स्मरण होय ऐसो नियम है।

श्री आचार्यजी आज्ञा करे है: अनुभवस्मरण एकही देहमें होवेंहै यहभी नियम नहिं संभव सकेंहै, क्योंकी कितनें मनुष्यकूं पहले जन्मकी देहमें जिनपदार्थनको अनुभव कियो है वाको स्मरण यादेहमें होजावेहै, क्योंकी देह दूसरी है परन्तु आत्मा तो एकही है। याही रीतिसों आत्माकों व्यापक मानोंगे तो सबदेहनके विषयभोगको स्मरण देवदत्तकूं होनो चाहिये। क्योंकी सबदेहनमें देवदत्तके आत्माको संबंध है, और ज्यो पहिले कहीकी जीवात्मा अपनी देहमेंही विषयभोग करसकेंहै और देहनमें अदृष्ट अर्थात् धर्माधर्म जीवात्माकूं विषयभोग नहिंकरवेदेवेंहैं, यहभी बात तुमारे मतमें नहिंसंभवसकेंहै, क्योंकि आत्मा सर्वत्र विद्यमान है, सबहीके आत्माको सबहीके मनके साथ संयोग है, तब तो आत्म-मन-संयोगसों भयो जो प्रयत्न और प्रयत्नसूं भयो जो कर्म, वासों भयो ज्यो धर्माधर्मरूप अदृष्ट सोभी सब जीवनको समान भयो, तब तो सबनकूं समान सुख-दुःख होनेचाहियें और जैसे देवदत्त यज्ञदत्तकी देहकरकें विषयभोग

नहिंकरसकेंहै एसे यज्ञदत्तभी देवदत्तकी देहकरके विषयभोग नहिं करसकेगो, क्योंकि अदृष्ट सबके समान होयवेसों, जो अदृष्ट देवदत्तके भोगकरवेमें प्रतिबन्धक है वोही अदृष्ट यज्ञदत्तके भोगकरवेमें प्रतिबंधक हो जावेगो। और जीवात्माकों व्यापक मानोंगे तो ईश्वरके आधीनभी जीव नहीं रहेगो, क्योंकि जैसे भगवान् व्यापक नित्य चैतन्य हैं, जैसेंही जीवभी व्यापक नित्यचेतन होयवेसों वह ईश्वरके समान आपुनको मानेंगे, तासों वेदादिकन्के अनुसार जीवकूं अणुरूप ही माननो। जीवमें चैतन्य गुण है सो विसर्पी है। अर्थात् फैलवेकी सामर्थ्यवालो है, जितनी बडी जीवकूं देह मिलेंहै वितनेमें फैलजावें है, और चैतन्यगुणको निरूपण प्रस्थानरत्नाकरमें स्पष्ट लिख्योहै।

विवादी: जीवात्माकूँ अणु मानोंगे तो आत्माके ज्ञान सुखदुःखादिकको प्रत्यक्ष नहिंहोयसकेगो, क्योंकि अणुके गुण अतीन्द्रिय होवेंहैं।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हैं : जन्य जे ज्ञानसखा-दिक हैं वे आत्माके धर्म नहिं हैं, वे सब मनके धर्म हैं, तामें श्रुति प्रमाण है, "कामः सङ्कल्पः श्रद्धा अश्रद्धा-हीर्धीर्भीरिति सर्वं मन एव" इति। और प्रत्यक्ष होयवेमें योग्यताकूंही कारणता है।

विवादी : आत्माकूं अणु मानोंगे तो अणुको तो प्रत्यक्ष

ज्ञान नहिं होवेंहै, जैसें "मैं हू" याप्रकारको आत्माकोभी प्रत्यक्ष ज्ञान नहिं होनोचाहिये, तथा योगीनकूं आत्मा प्रत्यक्ष दीख आवेंहै सो भी नहिं दीखनोचाहिये ।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : "मैं हू" यह जो प्रत्यक्ष ज्ञान है सो देहसम्वलित आत्माको है, केवल आत्माको प्रत्यक्ष नहिं होवेंहै। योगीलोग तो योगजधर्मसो अणुकोभी प्रत्यक्ष करलेहैं वैसेंही आत्माकोंभी अलौकिक प्रत्यक्ष विषय करलेंहैं, तासों वेद परमप्राप्त है। वेदमें आत्माकूं अणुपरिमाणवालो लिख्योहै उतनोही माननो।

विवादी : आत्मा तो व्यापकही होयगो, वेदमें तो अणुकी उपमा मात्र दीनीहै । अर्थात् जैसें अणु बहुत परिश्रमसों जान्योजायहै ऐसें आत्माभी परिश्रमकरकें चित्त शुद्ध कियो जाय तब जान्योजाय है।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : वेदमें झूठो वर्णन नहींहोयहै, और यदि ऐसोंही वेदको अभिप्राय होयतो "वालाग्रशतभागस्य" या श्वेताश्वतरकी श्रुतिमें वालाग्रके शतभागके शतभागको एकहिस्सा जीवको परिमाण लिख्यो है सो एसें विस्तारसों क्यों वर्णन करते! दुर्ज्ञेयता तो अणुमात्रके कथनसोंही सिद्ध होय जाती।

विवादी : मैंने आपको ऐसो अलौकिक प्रभाव नहिं जान्यो हतो। अब मेरे सब संदेह दूरभये, आपको मत सत्य है।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें : वैदिकशास्त्रमें वेदके

वचनकरकेंही व्यवस्था करनी. लौकिक युक्तिसों वेदोक्त प्रमेय नहिं, जान्यो जावेंहै, यहही "श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात्" या व्याससूत्रमें वेदव्यासजीको सिद्धान्त है। वैदिकरीतिसों आराग्रमात्र जीवकूं मानोंगे तो अवान्तर परिमाण वालो होयवेसों अनित्य होयगो इत्यादि दूषण भी हमारे मतमें नहिं हैं, क्योंकि या मतमें वेदवाक्यनसों व्यवस्था है। वेदविरुद्ध युक्ति अप्रमाण है, जैसें वेदमें भगवान्को स्वरूप कहीं अंगुष्ठमात्र, कहीं प्रादेशमात्र, कहीं हंसाकार, कहीं हंसरूप होयकें पुरमें अर्थात् शरीरमें प्रवेश वर्णन कियोहै वहाँ चिंटी आदि शरीरमें प्रादेशमात्र परमात्मा कैसें रहतोहोयगो, तथा परमात्मा नानापरिमाणवालो कैसें होजावेहै? इत्यादि तर्कना नहिंहोवेंहै। ऐसेंही भगवदंश जीवात्मा आराग्रमात्र होयकेभी नित्य है याविषयमेंभी तर्क नहिं चलावनो।

और गीताजीमें "नित्यः सर्वगतः स्थाणुः" या श्लोकमें जीवकूं व्यापक लिख्योहै सो तो जब भगवान्को आवेश या जीवमें आवेंहै तब भगवान्के व्यापकत्वादिक धर्मभी जीवमें आजावेंहैं, वे धर्म भगवान्के ही हैं जीवके नहिंहै, जैसें लोहके गोलामें अग्नि घुस जावेंहै तब लोहेको गोला भी जलायवे लगजावेंहै परन्तु जलावनो लोहेके गोलाको गुण नहिं है अग्निकोही गुण है, याही रीति जीव जब ब्रह्मज्ञानी होवेंहै तब ब्रह्मके आवेश होयवेसों ब्रह्मरूप होजावेंहै। तब व्यापकत्वादि धर्मभी प्रकट होजावें हैं।।५७।।

आनंदाशाभिव्यक्तौ तु तत्र ब्रह्माण्डकोटयः ।।
प्रतीयेरन् परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तत् ।।५८ ।।
प्रकाशकं तच्चैतन्यं तेजोवत्तेन भासते ।।
न प्राकृतेंद्रियैर्ग्राह्यं न प्रकाश्यं च केनचित् ।।५९ ।।

तत्वदीपप्रकाशः

ननु "ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" इति वाक्यादाराग्रमात्रत्वं न वास्तवमिति चेत्तत्राह।। आनंदांशाभिव्यक्ताविति।।

ब्रह्मत्वेपि न अधिकपरिमाणता वक्तव्या।। अण्वपि ब्रह्म व्यापकं भवति।। यथा कृष्णो यशोदाक्रोडे स्थितोऽपि सर्वजगदाधारो भवति तथा जीवास्यापि आनंदांशश्चेदभिव्यक्तस्तदा तस्मिन् ब्रह्मांडकोटयो भवंति। अतएव परिच्छेदेपि व्यापकत्वसिद्धेर्न तदनुरोधेन अधिकपरिमाणत्वम् अंगीकर्तव्यमित्याह।। परिच्छेदो व्यापकत्वं च तस्य तदिति।। अलौकिककेषु धर्मेषु प्रमाणमेव अनुसर्तव्यं, न लौकिकी युक्तिः।। अतो व्यापकत्वेपि नाराग्रमात्रत्वं दोषाय।।५८।।

धर्मांतरमाह।। प्रकाशकं तच्चैतन्यमिति।।

प्रकाशकं तत्तद्रूपं तस्य चैतन्यगुणो वा तेन तेजोवद्भासते। ततो ज्योतिः प्रयोगो।। "वृत्रस्य देहान्निष्क्रांतमात्मज्योतिः" इति यथा "चैद्यदेहोत्थितं ज्योतिः" इति नैतावता तेजः प्रकृतित्वं तेजसोऽपि ब्रह्मप्रकृतित्वादेव तथात्वं।। अतएव न रूपवत्वादिकमांशकनीयम्।।

लोकप्रमाणगोचरत्वं धर्ममाह।। न प्राकृतेंद्रियैर्ग्राह्यमिति ।।

रूपाद्यभावों सत्सन्निकर्षाभावाच्च ।। "यन्न स्पृशंति न विदुः" इतिवाक्यात्।। नापि केनचित्प्रकाश्यं यथा सूर्येण प्रकाशितो घटश्चक्षुषा गृह्यते न तथा इन्द्रियग्रहणार्थं किंञ्चित्प्रकाशकमस्तीत्यर्थः ।।५९।।

व्रजभाषाटीका

जब जीवको आनंदांश प्रकटहोवेंहै तब जीवमें क्रोडन ब्रह्मांड प्रतीत होयवेंलगेंहै, परन्तु व्यापक होवेंहैं वा समयमें भी अणुजितनोंही जीवको परिमाण रहेंहै, वहां अणु जीवमें क्रोडन ब्रह्मांड कैसे प्रतीत होते होंयगे ? यह आश्चर्य नहिं करनों। श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र छोटो रूप धारणकरके येशोदाजीकी गोदमें बिराजे हते वा समयमें छोटे रूपमें भी जगत् दिखायोहै, एसेंही जीवमें भगवान्को आवेश आवेंहै तब भगवान्को आनंदांश प्रकटहोवेंहै, तथा आनंदांशको धर्म जो विरुद्धधर्माश्रयता है वहभी प्रकटहोवेंहै तब अणुमात्र जीवमेंभी क्रोड ब्रह्मांड प्रतीत होवेंहैं विरुद्धधर्माश्रय तो लोकमें कोई पदवी नहीं दीखेंहै, ब्रह्मकूं विरुद्ध धर्माश्रय कैसे मानें ऐसी शंका नहिं करनी । लोकमें तो कोई सर्वज्ञ सर्वकर्ताभी नहिं दीखें है, परन्तु वेदके कहेंसो ब्रह्मकूं सर्वज्ञ सर्वकर्ता मानेंहैं। ऐसेही "तदेजति तन्नैजति" या यजुर्वेदकी श्रुतिके अनुसार ब्रह्मकु विरुद्धधर्माश्रयीभी माननो। अलौकिकधर्म लौकिकेन्द्रियादि प्रमाणन्सों नहिं जाने जावेंहैं और लौकिकयुक्तिकीभी वहां सामर्थ्य नहिं चलेंहै। आगेके श्लोकमें जीवके प्रकाशकधर्मको निरूपण करेंगे॥५८॥

जीव अथवा जीवको चैतन्यगुण प्रकाशक है, अर्थात् प्रकाशवालो है तासों तेज जेसो मालुम पडें है, ताहीसों वेदपुराणन्में ज्योतिरूपसों वर्णन है। भागवत्मेंभी वृत्रासुरकी

देहसों तथा शिशुपालकी देहसों निकसतोभयो जीव ज्योतिरूपही सबलोगनकूं भासमान भयो, परन्तु जीवकूं दीपकके समान पञ्चमहाभूतान्तर्गत तेजस् तत्वसूं बन्यो भयो ज्योतिरूपही नहिं मानलेनों। ब्रह्मधर्मरूप प्रकाशवालो है तासों ज्योति जैसो मालुम पड़ेहैं। जीव तो लौकिक इन्द्रियादिकन् करके ग्रहणकरवेमें नहिंआवेंहै, जैसें अंधकारमें धरी वस्तु दिया-सूर्यादिद्वारा दीखवेमें आवेंहै ऐसे जीवको स्वरूप दीया, सूर्य आदिद्वारा भी नहिं दीखसकेंहै।

तब यह शंका भई कि शिशुपाल वृत्रासुरके जीव निकसतेसमयमें सबनूँकूँ कैसे दीखगये ? ताको उत्तर आगेंके श्लोकमें लिखेंहैं ॥५९॥

योगेन भगवद्दृष्टया दिव्यया वा प्रकाशते ॥
आभासप्रतिबिंबत्वमेवं तस्य न चान्यथा ॥६०॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु तर्हि "पश्यतां सर्वलोकानाम्" इत्यादि कथमुपपद्यते इति चेत्तत्राह ॥ योगेनेति ॥

त्रेधा तद्दर्शनं, योगेन साधितं मनः पश्यति दिव्यास्तु या भगवंतं पश्यति दिव्या ज्ञानदृष्टिश्च पश्यति नान्यथा तद्दर्शनमित्यर्थः ॥

एवं स्वमते जीवस्वरूपमुक्त्वा "एकधा दशधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत्" इति वाक्यद्ब्रह्मप्रतिबिंबो ब्रह्माभासो वा जीवः इति कश्चिन्मन्यते तन्मतनिराकरणयाह। आभासप्रतिबिम्बत्वमिति।

यद्यपि तद्वाक्यं ब्रह्मवाक्यं तेनैव ब्रह्मैवनानारूपं चंद्रदृष्टांतेनोच्यते। एकस्य नानात्वमेव तुल्यत्वे दृष्टांतार्थो न प्रतिबिंबत्वम्॥ "प्रतिमुख्यस्य यथा मुखश्रीः" इत्यत्रापि तथा॥ रूपस्पर्शादियुक्तस्य द्रव्यस्य रूपमात्रोपलम्भः प्रतिबिम्बः क्रियाश्च। नतु धर्मस्पर्शो वा, तथा सति वलेन्दुः तं स्पृशेत्। तत्रस्वाधारस्वभावानुविधायित्वे सति सम्मुखस्थितार्थानुविधायित्वेन प्रतीतियोग्यो हि प्रतिबिंबः॥ स च इतरविलक्षणः। अतः प्रतिबिंबरूपमेकं भगवतः स्वतंत्रमिति मंतव्यम्। तत्रापि मानाद्यभावात्तदर्थं प्रयत्नाकरणात्। अतएव "समो मशकेन समो नागेन" इति श्रुतेः सर्वानुविधायित्वमपि संगच्छते॥ अतो मूलसेकः शाखायामपि गच्छतीतिवत्प्रतिबिंबेऽपि तथा भानमस्तीतिएतावन्मात्रमभिप्रेत्योच्यते आभासत्वं प्रतिबिंबत्वं नतु मुख्याभासवत्तस्यालीकं स्वरूपमित्यर्थः॥ "यदस्ति यन्नास्ति" इति वाक्याद्भगवतः सर्वं रूपमुपपद्यते नतु अन्यस्येति भावः॥ यथा महाराजस्य सर्वं रूपं सर्वा च कृतिर्न दोषाय॥६०॥

ब्रजभाषाटीका

तीन रीतिसों जीवको स्वरूप दीखेंहै, एकतो योगकरके (साधित) अर्थात् सध्योभयो मनकरके जीवकूं देखेंहै अथवा जिननेत्रन्सों भगवान्के दर्शन करेंहैं उननेत्रन्सों जीवकूं देखसकेंहै। जैसें शिशुपालको जीव उनकी दृष्टिसों दीख्यो, जिनकी दृष्टि भगवानकूं देखरहीहती। अथवा दिव्यदृष्टिसों जीव दीखेंहैं, जैसें वृत्रासुरको जीव दिव्यदृष्टिवाले देवतानकूँ दीखवेमें आयो॥ मायावादीके मतमें ब्रह्मको प्रतिबिंबरूप अथवा ब्रह्मको आभासरूप जीवकूँ मानेंहै ताको खंडन करेंहैं। "आभासप्रतिबिंबत्वमिति"।

जीव है सो ब्रह्मको आभासरूप तथा ब्रह्मको प्रतिबिंबरूप नहिं होय सकें है और ब्रह्मबिंदूपनिषद्में "एकधा दशधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत्" या वाक्य में भी एक ब्रह्म नानारूप होजावेंहै, जैसे एकचंद्रमा जलके घडान्में अनेकप्रकारवालो दीखेंहै येही बात लिखीहै। अर्थात् एकब्रह्मके अनेकरूप होयवेमेंही चंद्रमाको दृष्टांत दियोहै। या वाक्यसों जीव ब्रह्मको प्रतिबिंब है यह बात नहिं सिद्धहोयसकेहैं, जो एसो श्रुतिको अभिप्राय होयतो मुखकोही दृष्टांत श्रुतिमें लिखते॥ यद्यपि यह वाक्य जीवप्रकरणमें है तथापि अंश- अंशीकी अभेदभावना करायवेके लिये ब्रह्मको निरूपण या वाक्यमें कियोहै। "एक एवहि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः, एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत्" अर्थ-एक परमेश्वर अंशरूपकरिके सबशरीरन्में अनेकरूपसों स्थितहै, जैसे चंद्रमा अंशरूप किरणन्करिकें जलमें स्थितहोयहै। किरणरूप अनेक अंश अंशी चंद्रमासों अलग नहिंहैं ऐसे जीवरूप अंश अंशी ब्रह्मसों अलग नहिं हैं॥ याहीप्रकार श्रीभागवतमेंभी "प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः" या श्लोकमें मुखकी आभूषणादिकनसों शोभा करीजाय तो वा मुखके प्रतिबिंबकी विनाही कियें शोभा होयजावेंहै, ऐसेही परमेश्वर भक्तिकरकें संतुष्ट कियोजाय तो वाके अंशरूप जीवात्मा स्वतः संतुष्ट होजावेंहै। जैसे वृक्षकी जडमें जल डारिवेसों

शाखा स्वतः तृप्तहोयजावेंहै, अर्थात् जैसें प्रतिबिंबितमुखकी शोभामें मुखकी शोभा प्रयोजक-कारण है ऐसेही परमात्माको प्रसन्न होनो जीवनके प्रसन्नहोयवेको कारणहै। यहही बात "प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः" या श्लोकसों सिद्ध होवेंहै। परमात्माको जीव प्रतिबिंब है यह बात सर्वथा नहिं सिद्ध होवेहै।

प्रतिबिंब पदार्थको यथार्थ स्वरूप लिखेंहैं : जो पदार्थ दर्पण जलादिरूप जो आधार वाके जो स्वच्छता तथा मलिनता आदि धर्म उनके समानधर्म वालो होय और संमुखस्थित जो मुख चंद्रमा आदि पदार्थ उनकेभी समानधर्म वारो होय और प्रतीति होतो होय तासों 'प्रतिबिंब' कहनों।

यह प्रतिबिंब पदार्थ घटादिरूप सत्यसृष्टिसों तथा आभासादिरूप मिथ्यासृष्टिसों विलक्षण है। भगवान्के जो अनंतरूप हैं उनरूपन्में प्रतिबिंबभी भगवान्को एक स्वतंत्र रूपहै। जैसें भगवान्के औररूपन्की संख्या तथा परिमाण नहिं है तैसें प्रतिबिंबमें भी संख्या परिमाण नहिं है। एकमुखके हजारन् प्रतिबिंब हो सकेंहैं तासों संख्याको नियम नहिंहै। याहीप्रकार परिमाणकोभी नियम नहिं है, क्योंकि एक फुटके काचमें हाथीको प्रतिबिंब फुटमात्रको होयजावेंहै, चारहाथके काँचमें चारहाथको हाथीको प्रतिबिंब होयजावेंहै, तथा "समो नागेन समो मशकेन" इत्यादि श्रुतिन्के अनुसार भगवान् हाथी मच्छर तथा तीनलोकके

सबपदार्थन्‌के समानधर्मवाले हैं यह बात भी प्रतिबिंबमें संगत होवेहै, क्योंकि प्रतिबिंबहै सो हाथीके संमुख हाथी होयजावेंहै, मच्छरके संमुख मच्छर जैसो होजावेहै, यारीतिसों सबपदार्थके समान होसकेहैं।

शंका-प्रतिबिंबकूं तो मायिक पदार्थ मानेंहैं तब भगवान्‌को रूपांतर कैसें होयसकेहै। उत्तरः "यदस्तियन्नास्ति च विप्रवर्य" इत्यादि विष्णुपुराणादिकनके वाक्यन्‌सों चतुर्दशभुवन और सत्पदार्थ तथा असत्पदार्थ सर्व भगवद्रूपही है यह सिद्धांत सिद्ध होवेंहै, क्योंकि भगवान् विना और पदार्थ सर्वरूप नहिं होय सकेंहैं तासों मायिक प्रतिबिंबादिकभी आपकेही रूपांतर हैं। मायिकरूप धारणकरिवेमें आपकी कछूभी हानि नहीं है। लोकमेंभी चक्रवर्तीराजाके सब प्रकारके रूप तथा सबप्रकारके कार्य प्रशंसा योग्य ही समुझेजाँय हैं, उनमें दोषबुद्धि कोईकीभी नहिं होयहै, तब सकल जगत्‌के नियन्ता भगवान् के सत् असत्‌रूप धारणकरवेमें दोषसंभावना कैसें होयसकें है॥६०॥

आनन्दांशतिरोधानात्तत्तद्वत्तेन भासते॥
मायाजवनिकाच्छन्नं नान्यथा प्रतिबिम्बते॥६१॥

तत्वदीपप्रकाशः

आभासप्रतिबिंबत्वे प्रयोजकं रूपमाह॥ आनन्दांशतिरोधायानाद् इति॥

जीवरूपं एतत्तिरोधानात्तज्जीवत्वं भासते। तेन आनंदाशेनाविर्भूतेन

युक्तं यत्तद्वद्ब्रह्मवदवभासते इत्यर्थः। अंशद्वयस्य विद्यमानत्वात्सदंशस्फूर्तौवाभासत्वमुभयोः स्फूर्तौ प्रतिबिंबत्वं त्रितयस्फूर्तौ ब्रह्मत्वमिति निर्णयः। न तु लौकिकाभासत्वं तथा सत्यलीकता स्यादतो मायावादिव्यतिरिक्तास्तं तथा न मन्यन्ते इति।

मिथ्यावादं युक्तिबाधितमेव दूषयति। मायाजवनिकाच्छन्नम्इति।

अवश्यं प्रतिबिम्बसिद्ध्यर्थं व्यवधानं कल्पनीयम्। तन्मायादिकमेव भवतीति। मायाजवनिकाच्छन्नं न प्रतिबिम्बते॥ यथा तिरस्करिण्यां विद्यमानायां पुरुषो न प्रतिबिम्बते॥६१॥

ब्रजभाषाटीका

जब आपके मनमें मायिक-अमायिक सबही पदार्थ भगवान्‌के रूप है तब मायिक प्रतिबिंब अथवा मायिक आभासरूप जीवकूं मानलेवेमें आपकी कहा हानि है।

उत्तर-मायिक प्रतिबिंबादि रूप जो मिथ्याही जीवकूँ मानोगे तो मोक्षके साधन बतायवेवारे सब शास्त्र व्यर्थही हो जाँयगे। किञ्च वेदमें "योन्यथा सन्तमात्मानम्" या श्रुतिमें आत्माके अन्यथा ज्ञानीकूँ अर्थात् मनःकल्पित विपरीतस्वरूप मानवेवारेकूँ महापापी कह्योहै, तासों जीवको जैसो स्वरूप होय तैसोही माननों उचित है।

व्याससूत्रादिकन्‌में जो आभासादि-रूपता जीवकूं लिखीहै ताको कारण यह है आनन्दांशको तिरोधान होयहै तब जीवत्व भा-समान होय है। जब यह मनुष्य देहकों अपनो स्वरूप मानेंहै तब "मैं स्थूल हूँ", "मैं कृश हूं", "मैं गौरो

हूं", इत्यादि आधिभौतिक ज्ञान याकूँ होयहै, तब या अवस्थामें संदेशमात्रकी स्फूर्ति रहेंहै, तब ब्रह्माभास या जीवकूँ कह्योहै। जैसे कोई मनुष्यमें ब्राह्मणके सब धर्म-गुण नहिं होय केवल जातिब्राह्मण होय वासों जैसें ब्राह्मणाभास कहे हैं। जब यह मनुष्य देहसों अलग अपने स्वरूपसकूँ मानेंहै तब "मैं चेतन हूँ" या प्रकारको आध्यात्मिक ज्ञान याकूँ होवैहै। या अवस्थामें सत्ता तथा चैतन्य इन दोनों अंशन्‌की स्फूर्ति होवेंहै तब या जीवकुं ब्रह्म को प्रतिबिंब या जीवकूं शास्त्रमें कहेंहै। जैसे जातिब्राह्मणमें ब्राह्मणके कितनेक धर्म आयजावें तब वाकूँ ब्राह्मणसदृश कहेहैं। बिम्बके सदृशको नाम 'प्रतिबिंब' है। जब भक्तिआदि साधनकरिकें आनंदांश प्रकटहोवे है तब "सच्चिदानंदरूप मैं हू" ऐसी प्रतीति होवेंहै। या अवस्थामें आधिदैविक ज्ञान याकूँ होवेंहै तब या जीवकूं ब्रह्मरूप कहेंहैं। या रीतिसों आभासप्रतिबिंब ब्रह्म स्वरूपत्वादि-बोधक वाक्य जीवमें चरितार्थ होवेंहैं । लोकमें जैसे मायिक आभासप्रतिबिंब होवेंहै वैसो जीव नहिं है, वैसो जीवकूँ मानोंगे तो जीवकूँ मिथ्या माननों पडेगो। मायावादी विना और कोईकोभी ऐसो मन्तव्य नहिंहै, यह मिथ्यावाद युक्तिविरुद्ध है।

'मायाजवनिका' प्रतिबिंब सिद्ध होयवेंके लियें कछु व्यवधान अर्थात् आकाशादिकन्‌करिकें कछूक छेटी जरूर

माननी चाहिये। जेसें मुख तथा दर्पण के बीचमें आकाशको व्यवधान जरूर राखनों पडेहै ऐसें सृष्टिके पहिलें आकाश नहिं प्रकटभयो तब कायको व्यवधान हतो। जो कदाचित् मायाकोही व्यवधान मानोंगे तो प्रतिबिंब पडनोंही असंभव होयगो, क्योंकी माया तो ब्रह्मके स्वरूपकी छिपायवेवारी तिरस्करिणी- टेराके समान है। जैसे मुख और काँचके बीचमें टेरा आय जावें तो मुखको प्रतिबिंब नहिं पडेहै ऐसेंही मायाको व्यवधान होयवेंसो ब्रह्मको प्रतिबिंब नहिं होय सकेगो ॥६१ ॥

तत्र वृत्तेर्द्वासुपर्णाश्रुतेरपि विरुद्ध्यते ॥
गुहां प्रविष्टावित्युक्तेर्भगवद्वचनादपि ॥६२ ॥

तत्वदीपप्रकाशः

दूषणांतरमाह। तत्र वृत्तेरिति।

यो यत्र वर्तते स तत्र न प्रतिबिम्बते ॥ उपरिस्थितएव भ्रांत्या प्रतीतः आकाशः प्रतिबिंबते ॥ वस्तुतस्तु प्रभामंडलस्यैव रूपवतः प्रतिबिंबः ॥ तथा भ्रांत्या प्रतीतनीलरूपस्यापि गंधर्वनगरवद् वस्तुसामर्थ्यात्तथा प्रतीतिः ॥ सर्वथा दर्पणरेखावत्तत्र विद्यामानं न प्रतिबिंबते ॥ दूषणांतरमाह। "द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ समानं वृक्षं परिषस्वश्रुतेः इति जाते ॥ तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति" इति श्रुतेरिति। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्तीति वाक्यात्प्रतिबिंबस्य क्रियाबिंबस्य च तूष्णींभावो विरुद्धयते। प्रतिबिंबक्रियाया बिंबाधीनत्वादेकत्रा स्थितेश्च। श्रुत्या च तथा बोध्यत इति प्रतिबिंबकल्पना श्रुतिविरुद्धा।

न्यायविरोधमाह। गुहां प्रविष्टाविति। "गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि

तद्दर्शनात्''। स्मृतिविरोधमाह॥ भगवद्वचनादपी ॥ ''ममैवांशो जीवलोके इति'' ''उत्क्रामन्तं स्थितं वापि'' इति च ॥६२॥

व्रजभाषाटीका

द्वितीय दूषण यह है के जो पदार्थ जा पदार्थमें सदा रहतो होय वा पदार्थको प्रतिबिंब नहिं होयहै। जैसें काँचकी खुदीरेखाको वाही काचमें प्रतिबिंब नहिं पडेहै। ब्रह्म तो व्यापक है, सब ही पदार्थन्में सदाही रहेंहै। तासों वाको कोई पदार्थमेंभी प्रतिबिंब नहिं पड सकेंहै। यदि कदाचित् कहोगे आकाशभी व्यापक है याको प्रतिबिंब जलादिकन्में कैसें पडें है ? ताको यह उत्तर है : आकाशको प्रतिबिंब नहिंपडेहै किन्तु रूपवान् प्रभामंडलकोही जलादिकन्में प्रतिबिंब पडेंहै क्योंकी आकाशमें रूप नहिं है। प्रतिबिंबमें जो नीलरूप दीखेहै वामें आकाश के प्रतिबिम्ब की प्रतीतिकु तो भ्रमरूपही जाननों। वस्तुस्वभाव करिकें नीलरूप प्रतिबिंब है ऐसी प्रतीति होजावेहैं॥ तुमारे मतमें ब्रह्मरूपादिरहित है तासों ब्रह्मको प्रतिबिंब नहिंहोयसकेंहै। जो रूपरहित वस्तुकोभी प्रतिबिंब होतो होय तो वायुकोभी प्रतिबिंब होनों चाहिये।

सारांश यह भयो कि चक्षुकरके देखिवेयोग्य होय और अव्याप्यवृत्ति होय उस पदार्थकोही प्रतिबिंब होय हे। अर्थात् जो वस्तु चक्षुकरिके नहिं देखवे योग्य है और व्याप्यवृत्ति है अर्थात् व्याप्य-पदार्थमेंजो रहेहैं वाको उन व्याप्यपदार्थनमें

प्रतिबिंब नहिं पडसकेहै॥ यद्यपि भगवान्‌केनेत्र देखिसकेंहै परन्तु भगवान्‌की आपुन्‌को अपनो स्वरूप दिखायवेकी इच्छा होय तबहि देखिसकेंहैं॥ नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्‌कूँ नहिं देखिसकतहैं तासों भगवान् चक्षुर्योग्य नहिंहैं। तुमतो ब्रह्मकूं निर्धर्मक मानोहो, निर्धर्मकपदार्थको प्रतिबिम्ब नहिं हो सकें हैं तासों ब्रह्मको प्रतिबिंब पडनो सर्वथा असंभवही है॥

और दूषण कहेंहैं "द्वा सुपर्णा सयुजा सखायौ" या श्रुतिमें जीव परमात्मा दोनों एक वृक्षपै बैठेहैं। जीव वा वृक्षके फलको भोग करेंहै, परमात्मा नहिं करेंहै, यह बात लिखीहै। जो जीव परमात्माको प्रतिबिंबही होय तो परमात्माके फलभोग करें विना जीवात्मा कैसें फलभोग करसकें, क्योंकी प्रतिबिंबकी क्रिया बिंबके आधीन रहेंहै। लोकमेंभी देवदत्तके भोजनकरेंविना देवदत्तके प्रतिबिंबमें भोजन करवेकी चेष्टा नहिं प्रतीत होवेंहै। और बिंब प्रतिबिंब दोनों एकदेशमेंभी नहिं रह सकें हैं, क्योंकी प्रतिबिंब कांचमें रहेंहै वहाँ मुख नहिंरहेंहै। यदि जीव प्रतिबिंबरूप होय तो परमात्माको एकवृक्षपें जीवके साथ रहनों श्रुति नहिं वर्णनकरती। एक शरीररूप वृक्षमेंभी एकही देशमें जीव और अंतर्यामी रहेंहैं। "गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्" (ब्रह्मसूत्र १/२/११) या व्याससूत्रमें एकही हृदयरूप गुफामें जीव-ब्रह्मकी स्थिति लिखी है। और मुख्य स्मृति गीताजीमें "ममैवांशो

जीवलोके'' या श्लोकमें जीव मेरो सनातन अंश है यह लिख्यो है।। तथा ''उत्क्रामन्तं स्थितं वापि'' या श्लोकमें निकसतेभये जीवकूँ ज्ञानदृष्टिवारे देखेंहैं यह लिख्योहै। जीवकूं लौकिक प्रतिबिंबरूप मानोंगे तो अंशत्व तथा उत्क्रमण-क्रिया-निकसनों नहिं बन सकेगो तासों प्रतिबिंबपक्ष श्रुति-स्मृति-न्याय सों विरुद्ध है ।।६२।।

जीवाहानिस्तदा मुक्तिर्जीवन्मुक्तिर्विरुद्ध्यते ।।
लिङ्गस्य विद्यमानत्वादविद्यायां ततोऽपि हि।।६३।।

अधिष्ठातुर्विनष्टत्वान्न देहः स्पंदितुं क्षमः।।
प्रारब्धमात्रशेषत्वे सुषुप्तस्येव न व्रजेत्।।६४।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं प्रमाणैर्बाधित्वा युक्तिभिर्बाध्यते।। जीवहानिरिति द्वाभ्याम्।।

प्रतिबिंबपक्षे जीवहानिर्मुक्तिःस्यात्।। आत्महानमपुरुषार्थ इति मोक्षस्यापुरुषार्थत्वमापद्यते ।। अलीकता वाऽसुरब्रह्मविद्यायां स्थापिता। दूषणांतरमाह।। जीवन्मुक्तिर्विरुद्ध्यते इति।। तत्र हेतुः ''लिङ्गस्य विद्यमानत्वाद्'' इति ।। क्व प्रतिबिंबते इति वक्तव्यमंतःकरणेऽविद्यायां वा ? उभयोरशुद्धत्वात्प्रतिबिंब एव नोपपद्यते।। अस्तु वा तथापि लिङ्गपक्षे उपाधेर्विद्यमानत्वात्संसार एव ।। तदभावे परममुक्तिरेव नतु कथञ्चित्जीवन्मुक्तिरित्यर्थः।। ततोऽपि अविद्यायां प्रतिबिंबो विरुद्धायते इत्याह अविद्यायामिति।।६३।।

अथ जीवन्मुक्तो मुक्त एवेति चेत्तत्राह।। अधिष्ठातुर्विनष्टत्वादिति ।। देहः स्पंदितुं चलितुं न समर्थःस्यात्।।

"दैवादुपेतमुत दैववशादपेतम्" इति न्यायेन चलति इति चेत, तत्र आह॥ प्रारब्धमात्रशेषत्व इति॥

तत्राधिष्ठाता वर्तत एव परं नानुसंधत्ते॥ प्रारब्धं देहविद्यामानतामेव संपादयति नाधिकं भोजनादि कार्यं सुषुप्तौ तथोपलंभात्॥ तस्माज्जीवो न आमासो, न वा प्रतिबिंबः ॥६४॥

व्रजभाषाटीका

या श्लोकमें प्रतिबिंबादिपक्षनको युक्तिसों खंडनकरेंहैं॥ जीवकूं प्रतिबिंबरूप मानोंगे तबतो जीवात्माको सर्वथा नाश होजानोंही तुमारे मतमें मुक्ति भई । आत्महानि अपुरुषार्थ है। मोक्षकूं पुरुषार्थता नहिं भई। आसुर ब्रह्मविद्यामें अर्थात् नास्तिक चार्वाकादिकन्के मतमें आत्माकूँ मिथ्या मानेंहैं तैसोही तुमारो पक्ष भयो॥ दूसरो दूषण यह है, तुमारे पक्षमें जीवन्मुक्ति कछु पदार्थ नहिं भई । क्योंकी अंतःकरणमें अथवा अविद्यामें ईश्वर प्रतिबिंबको नाम 'जीव' भयो। जहां तांई अविद्या वा अन्तःकरण में विद्यमान रहेगी तहां तांई संसार ही है। जब अविद्या को वा अंतःकरणको सर्वथा नाश होयगो तब जीव परममुक्तही होयजायगो, जीवन्मुक्त कोईभी जीवात्मा नहिं होयगो। तबतो वामदेव आदिकन्कूँ वेदमें शुकदेव आदिकन्कूँ पुराणमें जीवन्मुक्त कहेहैं सो सब मिथ्याही होयगो। हमारे भगवत्सिद्धांतमें तो जीवकूं भगवान्को अंश मानेंहैं । तासों जहाँतक जीव अविद्याके आधीन रहे तहांतक संसारी कहावे। जब जीव अविद्याके

आधीन नहिंरहे और जैसें दिनमें निद्रा कारणमें लीन रहेहै या प्रकार वा जीवकी अविद्या कारणमें लीन रही आवें वह जीवन्मुक्त कहावेंहै।।६३।।

यदि जीवन्मुक्त हैं सो मुक्तही है, जीवन्मुक्ति कोई अलग पदार्थ नहिं है ऐसें कहोगे तो मुक्तदशामें जैसें अधिष्ठाता जीवको नाश मानोंहो तैसें जीवन्मुक्तके जीवात्माकोभी नाश माननों पडेगो। तबतो जीवन्मुक्तको देह चलवेकूँ समर्थ नहिं होनो चाहिये। शास्त्रमें शुकादिकन्‌की देहको चलनों प्रसिद्ध है। कदाचित् कहोगे के अधिष्ठाता जीवात्मा नहिंरहें तासों कहाभयो, प्रारब्धकर्मन्‌के द्वारा जीवन्मुक्तकी देह चलेंहै, ताको यह उत्तर है कि प्रारब्धकर्म देहकूँ विद्यमान तो राखसकेंहै परन्तु देहकूँ चलाय देनों अथवा भोजनादिकार्य करवादेनें यह प्रारब्धकी सामर्थ्य नहिं है। जो प्रारब्धकी यह सामर्थ्य होय तो सुषुप्ति अवस्थामें सूतेभये मनुष्यकूं प्रारब्ध क्यों नहिं चलायसकेंहै ? तासों जीवन्मुक्तकी देहमें अधिष्ठाता आत्मा जरूर रहेंहै परन्तु देहादिकन्‌में अध्यास नहिं रहेंहै ताकरण वाकूं अनुसंधान नहिं रहें है। इतने विस्तारकरिके जीव आभासरूप वा प्रतिबिंबरूप नहिंहै यह बात सिद्धभई।।६४।।

तत्वमस्यादिवाक्यस्य शोधितस्यापि युक्तितः।।
न विद्याजनने शक्तिरन्यार्थं तच्च कीर्तितम्।।६५।।

तत्वदीपप्रकाशः

ननु जीवब्रह्मणोरैक्यान्यथानुपपत्त्या तत्त्वमसीतिवाक्यानुरोधेन प्रतिबिंबयोरैक्यं युक्तमिति तथात्वं कल्प्यत इत्याशंकां निराकुर्वन् ''तत्वमसि'' इति वाक्यं न महावाक्यमित्याह। तत्वमसीति॥

इदं वाक्यं श्वेतकेतूपाख्याने वर्तते । तत्रोपक्रमे ''अपि वा तमादेशमप्राक्षो येनाश्रुतं श्रुतं भवति'' इत्यादिना एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञातम्॥ तदेकमेव चेत्सर्वं भवेत्तदोपपद्यते। यथा सुवर्ण खंडाः सुवर्णकार्यं च सर्वं सुवर्णमिति सुवर्णज्ञानेन तद्विज्ञातं भवति। तदर्थं ''सदेव सोम्य'' इत्यारभ्य निरूपितम्॥ ''ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि'' इति संपूर्ण महावाक्यम्॥ जडस्य सर्वस्यापि तदात्मकत्वमुक्तम्॥ जडगतदोषाश्च तत्र परिहृता-स्तत्सत्यमिति॥ पूर्वोत्तरयोर्जडजीवयोः सदात्मकत्वे मध्ये हेतु-माह॥ स आत्मेति॥ एवं जडस्य तदात्मकत्वमुक्त्वा जीव-स्याप्याह॥ तत्वमसीति॥ उपदेशश्चायम् ''आवृत्तिरसकृदु-पदेशात्'' इति ब्रह्मसूत्रादतः सम्पूर्णं महावाक्यमुपदेशः। तत्र यथा ''ऐतदाभ्यम्'' इत्यत्र न भागत्यागलक्षणा सदंशे तथोत्तरत्रापि चिदंशेऽवगंतव्यम्॥ नापि श्वेतकेतुरवतारः॥ पूर्वं स्तब्धत्वादिदोषकीर्त्तनाद्विरोधाच्चातो ब्रह्मवाक्यत्वात्तदेकदेशस्तत्व मसीति जीवब्रह्मणोरैक्यं न बोधयति वाक्यभेदप्रसंगादुपक्रमविरोधाच्च।

केचिदष्टपदानि महावाक्यमित्या-हुस्तदपि तथा॥ अतस्त्वमसीति छेदस्तु न वैदिकानां संमतः । अतो नास्य विद्याजनने शक्तिः। अन्यार्थकीर्तनात्॥६५॥

व्रजभाषाटीका

कितनेक वादी ''तत्वमसि'' महावाक्यके अनुसार ब्रह्म

जीवकी एकता करवेकेलियें बिंब प्रतिबिंबकूं एक मानके या दृष्टांतसों ब्रह्मकूं बिंब तथा जीवकूं प्रतिबिंबरूप मानकें जीव ब्रह्म इन दोनोंकूं एक मानेंहैं उनके मतको निराकरण करेंहैं।

"तत्वमसि" इतनों सो वाक्य महावाक्य नहीं है, क्यंकि यह वाक्य श्वेतकेतूपाख्यानको है। तहां उपक्रममें आरम्भमें एकपदार्थके ज्ञान होयवेंसो सबपदार्थको ज्ञान होवेंहै ऐसी प्रतिज्ञा है। यह बात जब बन सकें जब एक पदार्थ सबरूप होय रह्यो होवें। जैसे सुवर्ण कंठा कुण्डल मुद्रिकाआदि अनेकरूप हो जावें है, तो सुवर्णके ज्ञानमात्रसों सुवर्ण निर्मित सब आभूषणपात्रादिकन्को अपने आप ही ज्ञान होय जाय है । या तरेहसु सबजगत्के ज्ञानकरायवे-के लियें "सदेव सोम्य" इत्यादि श्रुतिनमें ब्रह्म सबको कारण है। कार्य हैं सो कारणसें अन्य नहींहैं, ब्रह्म दुर्जेय है, कार्यकरकेंही जतायोजावेहै, इत्यादी निरूपण कियो । ताके आगे "ऐतदात्म्यमिदं सर्वम्" या वाक्यसों मात्र जड पदार्थन्केसाथ ब्रह्मको तादात्म्य संबंध बतायो अर्थात् जड़ पदार्थ ब्रह्मात्मक है यह बात सिद्ध करी। तहां यह शंका भई, जो जड़ पदार्थ ब्रह्मात्मक कैसें होयसकेंहैं, जड़ पदार्थ तो विनाशवाले होयवेंसो असत्य मालुम पडेंहै, ताशंकाके दूरकरवेके लिये "तत्सत्यम्" ये पद कहें हैं। या करिके कार्यकूं सत्यत्व कहिके सर्वदा कार्यकी सत्ता जताई और

विनाशादिक प्रतीत होवें हैं वे सब पदार्थकेही स्वरूपान्तर हैं। याप्रकार छः भाव विकारनूको परिहार कियो तथापि जगत् ब्रह्मात्मक नहींभयो क्योंकि जड़ जीव इनदोनों पदार्थनको नाम 'जगत्' है। तासों जड़कूं ब्रह्मात्मकता सिद्ध करकें जीवकूं भी ब्रह्मात्मकता सिद्धकरवेके लियें "तत्वमसि" यह वाक्य कह्योहै। (तस्य भावस्तत्वं त्वमसि यथा इदं सर्वं जड़वस्तु एतदात्मनो भावस्तथा त्वमपि तदात्मनो भावोसि। त्वं पदस्य मध्यमपुरुषेण लाभो न त्वध्याहारः) भाषार्थ-या वाक्यसों जीवकेसाथ तादात्म्यसम्बन्ध ब्रह्मको बतायो है॥ हे श्वेतकेतु! तूँ 'तत्' ब्रह्मको भावरूप है, अर्थात् ब्रह्मात्मक है, अर्थात् जड़ पदार्थ ब्रह्मको कार्य है तासों ब्रह्मात्मक है। ऐसेही जीव ब्रह्मका अंश है तासों ब्रह्मात्मक है। जैसें कार्य कारणसे जुदो नहिंहोय है ऐसें अंश अंशीसों जुदो नहिंहोयहै।

अब यह शंका भई कि जड़-जीव दोनों न्यारे- न्यारे सुभाववाले पदार्थहैं, ये दोनो एक-एक ब्रह्मात्मक कैसें होयसकें हैं ? या शंकाकूं दूरकरवे के लिये पूर्वोत्तर जड़-जीवकी ब्रह्मात्मकता सिद्ध करवेवारो मध्यमें हेतु कहेंहैं। "स आत्मा" अर्थ वो परमेश्वर सबको आत्मा अर्थात् सबको स्वरूप है, जैसे सोनाके बने भये दंड कुंडल कंठाआदि पदार्थनूमें कुंडल न्यारे मालुम पडेंहैं, दंडसों कडा न्यारे मालुम पडेहैं परन्तु सोनासों दण्ड-कुण्डल- कडा आदि

पदार्थ न्यारे नहिंहोय-सकेंहै, क्योंकि उनपदार्थन्मेंसों सोना लेलियो जाय तो उनपदार्थन्को स्वरूपभी नहीं रह सके है, क्योंकी सुवर्णही उनपदार्थन्को आत्मा अर्थात् स्वरूपभूत है। याहीप्रकार जड़जीव अलग-अलग दीखें हैं तथापि ब्रह्म सबको आत्मा है। ब्रह्मसों न्यारे जड जीव कभी नहीं होसकेंहैं। या रीतिसों या महावाक्यमें जड़-जीवात्मक सबपदार्थन्कूं ब्रह्मरूपता सिद्ध करिकें एकब्रह्मके ज्ञान होयवेसों सबके ज्ञान होयवेकी प्रतिज्ञा सिद्धकरी तासों केवल "तत्वमसि" इतनो मात्र महावाक्य नहीं है। किन्तु सोलह पदको समुदाय महावाक्य है। (इतनो बडोही यह उपदेश है)

"तत् - त्वं- असि" यह तीन पद मानिवेमें भी सिद्धान्तमें कछू हानि नहीं है। या पक्षमेंभी अंशअंशीको अभेदही पूर्वोक्तरीतीसों सिद्धहोवेहै।

कितनेक मतवारे "तत्वमसि" यहां भागत्याग लक्षणा करेंहैं सोभी पक्ष ठीक नहीं है। जैसे सदंश जडके ब्रह्मात्मबोधक "ऐतदात्म्यम्" या वाक्यमें भागत्याग लक्षणा नहीं है या प्रकार चिंदश जीव के ब्रह्मत्मबोधक "तत्वमसि"या वाक्य में भी भाग त्याग लक्षणा नहीं माननी।

कितनेक माध्वमतानुयायी कहें हैं कि श्वेतकेतु अवतार हतो तासों वेदमें वाके प्रति गुरुने "तूं ब्रह्म है" ऐसें

"तत्वमसि" या वाक्यमें उपदेश कियोहै यहभी अर्थ ठीक नहीं। श्वेतकेतु अवतार होतो तो पहिली स्तब्धता वेद पढवेको अभिमान तथा अज्ञानादि दोषन्कों श्वेतकेतुमें नहीं वर्णन करते।

शांकरभाष्यमें अष्टपदको महावाक्य मानेंहैं, वा पक्षमेंभी पूर्वोक्त दूषण आवेंहै।

माध्वमतके एकदेशी 'अतत्वम्' ऐसो पद निकासकें "हे श्वेतकेतु तूं ब्रह्म नहींहै" एसो अर्थ करें है सो कोई वैदिकन्के सम्मत नहीं है।

इतने विस्तारसों यह बात सिद्ध भई कि "तत्वमसि"इत्यादि वाक्यकी ब्रह्माभेद ज्ञान करवेकी सामर्थ्य नहीं है किन्तु ब्रह्मकी सर्वरूपता जतायवेके लिये वेदमें "तत्वमसि"इत्यादि वाक्य लिखें हैं ॥६५॥

ब्रह्मणः सर्वरूपत्वमवयुज्य निरूपितं ॥
अलौकिकं तत्प्रमेयं न युक्त्या प्रतिपद्यते ॥६६॥

तपसा वेदयुक्त्या च प्रसादात्परमात्मनः ॥
विद्यां प्राप्नोत्युरुक्लेशः क्वचित्सत्ययुगे पुमान् ॥६७॥

तत्वदीपप्रकाशः

तदेवआह ब्रह्मणः सर्वरूपत्वम् इति ॥

अवयुज्य। जड जीवौ प्रथक्कृत्य। "सर्वं ब्रह्म" इति वक्तुं जीवस्य ब्रह्मता निरूपिता॥ नन्वस्तु वाक्यभेदः॥ तथा सति एतावन्मात्रं

जीवस्य ब्रह्मतां बोधयति। तच्च साक्षादनुपपन्नं सद्भागत्यागलक्षणया अखंडमेव वाक्यार्थं बोधयिष्यतीति चेत्साधु बुद्धिमतां बकबंधप्रयासो वृत्तः ।। उपदेशफलमायुष्मतां किं वृत्तमित्यनु-संधेयम् ।। ब्रह्मभावेनाधिक-धर्माभावात् ।। देहादिभेदबोधनेनापि दोषनिराकरणसंभवाच्च ।। ततो व्यर्थः प्रकरणभेदमप्यंगीकृत्य महावाक्यत्वेनोपदेशप्रयासः ।।

तर्हि श्रुतिः कथमुपदिशतीति चेत्तत्राह ।। अलौकिकं तत्प्रमेयमिति ।। लौकिकं हि लोकयुक्त्यावगम्यते ब्रह्म तु वैदिकम् ।। वेदप्रतिपादितार्थबोधो न शद्बसाधारणविद्यया भवति किंत्वन्यत्साधनमस्तीत्याह ।।६६।। तपसा इति ।। तपः पूर्वाङ्गं: वेदयुक्तिः सहकारिणी, भगवत्प्रसादो मुख्यं कारणम्।। क्वचिद्देशविशेषे।। सत्ययुगे काले। पञ्चाङ्गसंपत्तौ वाक्यार्थबोधो भवति ।। अन्यथा "कं ब्रह्म खं ब्रह्म इत्युपाख्याने कथभ्उपदेशमात्रेणैव बोधः, कथम् इदानींतनानां न बोधः ।।६७।।

व्रजभाषाटीका

जड़ जीव दोनों पदार्थ परस्पर विलक्षण हैं यह जतायवेके लियें वेदमें जड़-जीवकूं अलग-अलग दिखाये, परन्तु परस्पर जड़-जीव भिन्न हैं तथापि ब्रह्मसों भिन्न नहीं हैं यह जतायवेके लिये जीवकी ब्रह्मात्मकता दिखाई है। सम्पूर्ण वाक्य तो ब्रह्मकी सर्वरूपता सिद्ध करवेके लिये वेदमें निरूपण कियोहै।

कितनेक आग्रही मायावादी वाक्यभेदकूं मानकरिकें भागवत्याग लक्षणाकूं भी अंगीकार करकें तथा शब्दकों साक्षात्ज्ञान करायवेवारो मानकरकें "तत्वमसि" इतनेंसे

वाक्यकूं साक्षात् ब्रह्मको अनुभव करायवेवारो मानेंहैं। तहां उनवादीन्सों पूछनो चाहिये, ऐसो मानवेसों तुमारे कहा लाभ भयो। क्योंकि "तत्वमसि" या उपदेशसों कोईकोंभी साक्षात् ब्रह्मज्ञान नहिं होतो दीखेहै। उपदेश भये पीछे भी वा जीवमें सर्वज्ञता आदि अधिक ब्रह्मधर्म कछु मालुम नहीं पडें हैं, तासों याकों महावाक्य मानवेको प्रयास व्यर्थही है।

कदाचित् कहोगे जा जीवकूं ऐसो उपदेश होजायगो वो जीव आपुनको संसारसों तो जुदो मानेगो । तो संसारही दोषरूप है । यासों निवृत्ति हो जानो येही लाभ होयगो, ताको यह उत्तर है कि संसारसों निवृत्ति तो सांख्यशास्त्रसेंभी होयसकेहै, क्योंकि सांख्यमेंभी सब देहादिपदार्थनसों आत्माकों अलग मान्योहै, तासों प्रकरणभेद मानके याकूं महावाक्य मानवेको तुमारो श्रम वृथाही है॥

कदाचित् कहोगे के श्रुति अभेदको उपदेश क्यों कररहीहै? ताको यह उत्तर है। जैसों "तत्वमसि" श्रुति अभेदको उपदेश कररहीहै तैसें "तपसा ब्रह्म विदज्ञासस्व" "धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्" इत्यादि श्रुति तपश्चर्या तथा भगवत्कृपा आदिसों ब्रह्म जानोजाय है यहभी तो कहरहीहै, तासो सब श्रुतिनकी एकवाक्यता करवेसों यह बात सिद्ध होयहै कि ब्रह्मको स्वरूप लौकिकयुक्तिन्सों नहिं जान्योजाय है, क्योंकि ब्रह्म तो वेदसोंही जान्यो जायहै, और वेदके अर्थको बोध लौकिकयुक्तिसों अथवा केवल व्याकरणादिकन् करकें

नहिं होय सकेंहैं । किंतु वेदार्थ जानिवेके उपाय और हैं उनको निरूपण आगेके श्लोकमें करेंगे ॥६६॥

वेदार्थज्ञान पांच साधन होंय तबही ठीकतरेहसुंहोवें है, तप है सो प्रथमसाधन है। द्वितीय साधन वेदमें ब्रह्मज्ञान करायवेके लिये युक्तियें लिखीहैं उन युक्तिनको ज्ञान होनों चाहिये। तीसरो साधन भगवत्कृपा होनी चाहियें, यह मुख्य कारण है। चतुर्थसाधन देश अच्छो होनो चाहिये। पांचवो साधन काल अच्छो होनो चाहिये, जैसें सत्ययुग। या प्रकार पांच अंग जब मिल जावें तब वेदवाक्यनको अर्थ जान्योजायहै। तदुपरांत वेदमें इंद्रप्रजापतिके संवादमें सौ वर्ष ब्रह्मचर्य राखनो लिख्योहै इत्यादि बहुत श्रमसों वेदार्थज्ञान होवेहै। जो विना साधन यदि वेदके वाक्यन्को अर्थ ज्ञान होजातो होय तो "कं ब्रह्मेत्युपासीत खं ब्रह्मेत्युपासीत" अर्थ-कं ब्रह्म है ऐसे उपासना करनी, खं ब्रह्म है ऐसे उपसना करनी इत्यादि श्रुतिन्के उपदेशकरकेंहि साधन हीन अभीके मनुष्यनकूं ज्ञानसिद्धि क्यों नहिं होयजावेंहै और सत्ययुगादिकन्में जिनके सब साधन सिद्ध हते उनकूं उपदेशमात्र करके हीं कैंसे ज्ञान हो जातो हतो ॥६७॥

सर्वज्ञत्वं च तस्येष्टं लिङ्गं तेजोप्यलौकिकं॥
तत्प्राप्तावपि नो मुक्तिर्जाग्रत्स्वप्नवदुद्भवः॥
अविद्याविद्ययोस्तस्माद्भजनं सर्वथा मतम्॥६८॥

तत्वदीपप्रकाशः

इदानींतनानामपि बोध इति चेत्तत्राह॥ सर्वज्ञत्वञ्च इति॥

स्वार्थं सर्वज्ञत्वं लिंगं परार्थमलौकिकं तेजः इति॥ ननु तथापि वाक्यार्थज्ञानेएव-ईश्वरप्रसादार्देर्भक्तेश्चोपयोग उक्त इति चेत्तत्राह॥ तत्वप्राप्तावपि नो मुक्तिरिति॥ उपनिषद्भिर्महावाक्यार्थविद्याप्राप्तावपि ब्रह्मभावः सायुज्यं वा न तस्य द्रष्टांतेन तथाभावस्य कालपरिच्छेदात्॥ यथा जागरणस्वप्नौ परस्परोपमर्दनेनाविर्भवतस्तिरोभवतश्च तथैव विद्याऽविद्ये। अतो विद्योपमर्दनेनाविद्या पुनराविर्भविष्यतीति व्यर्थः प्रयासः॥ तस्मात् स्वतंत्रभक्त्यर्थं सायुज्याद्यर्थं च सर्वथा भजनं मतम्॥६८॥

ब्रजभाषाटीका

कदाचित् कहोगे के अभीके मनुष्यनूँ ज्ञान नहिं होवेंहै यह बात कैसे मालुम पड़ी ? ताको यह उत्तर है। सर्वज्ञता होयजानो तथा अलौकिक तेज होजानो ज्ञान होयवेको लक्षण है। अभी वेद पढवेवारेनूमें सर्वज्ञता तथा अलौकिक तेज कछु भी नहिं होय है। तासों अभीके मनुष्यनूँ वेदार्थको बोध नहिं होयहै यह निश्चय भयो।

आशंका : वेदार्थके ज्ञान होयवेमें भगवत्कृपा कारण है और भगवत्कृपा भक्ति होय तब होय, या रीतिसों ब्रह्मके साथ अभेदको ज्ञान होयवेमें भक्तिको उपयोग भयो।

उत्तर : भगवत्कृपासों उपनिषदन् करिके महावा-क्यार्थ विद्याकी प्राप्ति भये पीछेभी अर्थात् वेदोक्त ज्ञान भये पीछेंभी अधिकारके अनुसार सायुज्यमुक्ति अथवा ब्रह्मभाव प्राप्त

होयवेकेलियें भक्ति अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि ज्ञानको तिरोभाव होयके अज्ञान प्रकट होय जायतो ज्ञानके लिये कियो भयो परिश्रम व्यर्थ होयजाय। जैसे सतोगुणके उदय होतेंही मनुष्य जाग जावेंहै, तमोगुण के उदय होते ही सोय जावे है, तैसें ही सतोगुण के उदय सों तमोगुणके उदयसों ज्ञान होयजावेंहै। तमोगुणके उदयसों अज्ञान होजावेंहै। भक्तिसों तो ज्ञान- अज्ञान (विद्याअविद्या) के कारण मायाकी निवृत्ति हो जावेंहै "मायामेतां तरन्ति ते" ऐसे या वाक्यमें स्पष्ट लिख्योहै। तासों ज्ञानीकूँ तथा अज्ञानीकूँ स्वतन्त्रभक्ति सिद्ध होयवेके लियें तथा सायुज्य ब्रह्मभावके लियें अवश्य भगवद्भक्ति करनी चाहिये। याप्रकार जीवप्रकरणकूं समाप्तकरकें परब्रह्मको निरूपण करेंहैं।।६८।।



ब्रह्मप्रकरण

सच्चिदानंदरूपं तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम् ।।
सर्वशक्तिस्वतंत्रं च सर्वज्ञं गुणवर्जितम् ।।६९ ।।
सजातीयविजातीय स्वगतद्वैतवर्जितम् ।।
सत्यादिगुणसाहस्त्रैर्युक्तमोत्पत्तिकैः सदा ।।७० ।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं जीवप्रकरणं समाप्य ब्रह्मप्रकरणाह ।। सच्चिदानंदरूपम् इति ।। 'ब्रह्म' इति धर्मिनिर्देशः परब्रह्मवाचकः ।। ब्रह्मपदार्थमाह ।। व्यापकमिति ।। गुणोपसंहारन्यायेन "अविनाशी वारेयमात्माऽनुच्छित्ति धर्मा" इति श्रुतेरव्ययम् ।। सर्वशक्तीति "यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः" इति श्रुतेः सर्वशक्तिः ।। निर्द्धर्मकत्वे सर्वेषामनुपास्योऽप्राप्योऽफलश्च स्यात् ।। अतएव स्वतंत्रम् ।। यो हि निरवधिज्ञानक्रियाशक्तियुक्तः स स्वतंत्रो भवति । चकारात् "सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः" इति श्रुतेः ।। सर्वं वशे समानयति गुणवर्ज्जितं प्राकृतगुणरहितम् ।। एवं षड् धर्माः निरूपिताः ।।६९ ।।

तत्र व्यापकत्वं नाम देशाद्यपरिच्छिन्नत्वम् ।। तद्वस्तुपरिच्छेदेनोपपद्यत इति त्रितयपरिच्छेदाभावायाह ।। सजातीयइति ।।

सजातीयाःजीवाः ।। विजातियाः जडाः । स्वगता अंतर्यामिणः । त्रिष्वपि भगवाननुस्यूतः ।। त्रिरूपश्च भवतीति तैः निरूपितं द्वैतं भेदस्तद्वर्ज्जितम् ।। अत्र बुद्धिरतवारेष्विव कर्त्तव्या ।।

एवं भगवत्त्वमुपपाद्य तंत्रोक्तान्गुणानाह।। सत्यादिगुणसाहस्रैरिति।। "सत्यं शौचं दया क्षांतिः" इत्यादिश्लोकैः सत्यादयो गुणा निरूपिताः।। ते चौत्पत्तिकाः सदा सृष्टिप्रलयादावपि।।७०।।

व्रजभाषाटीका

(ब्रह्मेति) ब्रह्म सच्चिदानंदरूप है, व्यापक है यासों अखंड ऐश्वर्य वारो है यह बात जताई। श्रुतिनमें ब्रह्म के परस्परविरुद्ध अनेक धर्म लिखेहैं। ब्रह्म जैसें छोटेसों छोटो है और बडेसोंभी बडो है इत्यादिक। परंतु उनधर्मन्के लियें न्यारे -न्यारे ब्रह्म मानेंजांय तो अनेक ब्रह्म होजावेंहैं, तासों उन सबगुणन्को एकब्रह्ममेंही उपसंहार माननो पडेहै। "ब्रह्म अविनाशी है" या पदसों ब्रह्म वीर्यवारो है यह बात जताई। और सर्वशक्ति है अर्थात् सब प्रकारकी सामर्थ्यवारो है या पदसों यशवारो है यह बात जताई।' स्वतन्त्र है' अर्थात् जाकी ज्ञानक्रियाकी अवधि नहिंहोयहै वहही स्वतन्त्र कहावेंहै, यों कहिके ब्रह्म श्री वारो है यह बात सिद्ध भई। 'सर्वज्ञ हैं 'सब पदार्थनकूँ जानें है यापद सों ज्ञानवारो हैं यह बात जताई। और "प्राकृत गुणन्करिके रहित हैं" अर्थात् प्रकृतिके गुणनमें आपकी आसक्ति नहींहै यापदसों पूर्ण वैराग्य जतायो।। या प्रकार परब्रह्ममें छः ६ धर्म दिखाये।

जो ब्रह्मकूं निर्धर्मक- निराकार मानोंगे तो कोईभी मनुष्य ब्रह्मकी उपासना नहिं कर सकेगो। तथा उपासना प्रकरणके वेदभागमें "एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षु-

र्विश्वरूपः'' इत्यादिक वाक्यन्में जो वैश्वानरको मूर्द्धा सुतेजा है, चक्षु विश्वरूप है, इत्यादि धर्म दिखायकें उपासना करनो कह्यो है सो सब व्यर्थ जायगो। निराकार होयवेकें कारण कोई ब्रह्मकी उपासना नहिंकर सकेंगे तो जीवकूं ब्रह्मकी प्राप्तिभी नहिंहोसकेंगी, तथा जीवनकूँ परब्रह्म कछु फलभी नहिं दे सकेगो। धर्मरहित-निराकार ईश्वरकूं मानोंगे तो ''सर्वस्येशानः'' या श्रुतिमें ईश्वर सबको स्वामी है यह बात लिखी है सो भी नहिं बन सकेगी। तासों श्रुतिके कहेभये सब धर्म ब्रह्ममेंहैं और जिन धर्मन्की श्रुतियें नाईं कररही हैं विनधर्मनकूं लौकिकधर्म जानने। वेद परम आप्त है, अपने कहेभये धर्मनकों अपनेही वाक्यन्सों निषेध कभी नहिंकरें है, क्योंकि कहिके फेरि नटजानो मिथ्यावादीको काम है।

ब्रह्म है सो व्यापक है, अर्थात् देश-काल वस्तु करकें जाको नाप- तोल नहिंहोय सकें वा पदार्थको 'व्यापक' कहेहैं। जहां तांई नाप तोल करिवेवारो पदार्थ अलग होय तहां तांई व्यापकता नहिं होय सकें। ब्रह्मसों भिन्न तो कोईभी पदार्थ नहिं है, क्योंकि जगतमें जड़-जीव-अंतर्यामी ये तीन पदार्थ हैं। भगवान्नें इच्छाकरकें चैतन्य-आनन्द छिपाय लीनों तब विजातीय जडपदार्थ प्रकटभये। जब आनंद छिपायलीनो तब सजातीय जीव प्रकटभये। जब आपने सत्-चित्-आनन्द तीनों अंशन्को प्रकट राखिके परिछिन्न रूपसों अर्थात् परिमाणवाले रूपसों नियतकार्य करवेके लियें

इच्छा करी तब स्वगत अन्तर्यामी प्रकटभये, इन तीनोंही पदार्थन्में भगवान् अनुस्यूत हैं, अर्थात् जडमें सद्रूपकरिकें विराजें हैं, चिद्रूपकरिकें जीवमें विराजें हैं, तथा प्रकट आनंदरूप करिके अंतर्यामीमें विराजेंहैं॥ जड़-जीव-अंतर्यामीरूप आपही होयरहेंहैं, तासों इन तीनों पदार्थन्को भेद आपमें नहिंहै, अर्थात् ये तीनों पदार्थ भगवान्सों न्यारे हैं ऐसी बुद्धि नहिं राखनी। जैसें भगवान्के अवतारनकों भगवान्सों अलग नहिंमानें हैं तैसें जड़-जीव-अंतर्यामीकूंभी भगवान्सों न्यारे नहिं माननें, क्योंकि वेदमें "उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति" इत्यादि श्रुतिन्में भगवान्सों अलग कोई पदार्थकूं मानें है वाकूं भय होयहै यह बात लिखी है।

सत्य दया आदि हजारन् गुण आपमें सदाही रहे हैं, अर्थात् सृष्टिकालमें प्रलयकालमें तथा अवतारदशामें ये गुण जैसेके तैसे रहेआवेंहैं, तिनमेंसो कितनेक गुण श्रीभागवतमें वर्णन कियेहैं उनके नाम वर्णनकरें हैं। सत्य १, पवित्रता २, दया ३, क्षमा ४, दान ५, संतोष ६, सरलता ७, शम ८, दम ९, समता १०, तप ११, (तितिक्षा) अपराध सहलेनो १२, उपराम १३, (श्रुत) शास्त्रकुं विचारनों १४, स्वरूपज्ञान १५, वैराग्य १६, ईश्वरता १७, शूरता १८, तेज १९, बल २०, स्मृति २१, स्वतंत्रता २२, क्रियाकुशलता २३, कान्ति २४, धीरता २५, कोमलता २६, बुद्धिवैभव

२७, विनय २८, सुस्वभाव २९, इंद्रियमनशरीरकी सुंदरता ३०, भोगकी योग्यता ३१, गंभीरता ३२, स्थिरता ३३, श्रद्धा ३४, पूज्यता ३५, निरहङ्कारता ३६, इत्यादि अनन्तगुण अवतारमेंभी आपके संगही प्रकट होवेंहैं ॥७० ॥

आप अनंतगुणके आधार हैं, यामें कहा आश्चर्य है, किंतु वेदमें "स सेतुर्विधरणः" इत्यादि श्रुतिनूमें सर्वपदार्थके आप आधार हैं यह बात लिखी है। सबके आधार होनो ब्रह्मधर्म है यह बात "धृतेश्च महिम्ना" इत्यादिसूत्रनूमें स्पष्ट लिखी है।

शंका- जब आपको एसो स्वरूप है तो सब जीवनकूं एसे स्वरूपको क्यों नहिं अनुभव होय है? ताको उत्तर गीताजीमें लिख्यो है "नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृत्तः"। अर्थ-सबजीवनकूं मेरे स्वरूपको अनुभव नहिंहोयहै क्योंकि मैं योगमायाकरके ढक्योभयो हूं।

तहां यह शंका होयहै-मायाकरके ढकेभये आपहैं, तबतो मायाके आधीन भगवान् होंयगे ? एसो संदेह होवेहै ताके दूरकरवेके लिये श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञाकरें हैं "वश्यमायम्" अर्थ-वश है माया जिनके भगवान् मायाके आधीन नहिंहैं माया भगवान्के आधीन है। जैसे पाशवारे पुरुषकी पाश औरनूकूं बांधे है पाशवारेकूं नहिं बाँध सकेंहै। जैसें सूर्य मेघनूसों कभी ढकजावे है तासों मेघनूके आधीन सूर्य नहिं होवेंहै, क्योंकि सूर्यकी किरणद्वारा मेघ बनेंहै तासों मेघ सूर्यसों जुदे नहिं होय सकेंहैं। "याभिरादित्यः तपति

रश्मिभः ताभिः पर्जन्योवर्षति'' या श्रुतिवचनसों मेघ के सूर्यसों अभिन्न होयवे की सिद्धि होवे है । याहीप्रकार मायाभी भगवान्को एकरूप है, यह बात एकादशस्कन्धमें ''तन्मायाफलरूपेण'' या श्लोकमें स्पष्टहै।

अब यह शंका होवें है कि वेदमें ''विश्वतश्चक्षुः'' ''सहस्त्रशीर्षा पुरुषः'' इत्यादिवाक्यन्में जो ब्रह्मके आकारको वर्णन है सो आकारभी मायाकोही बनायो होयगो, या शंकाके दूरकरवेके लियें कहेंहैं ''आनन्दाकारम्''। मुंडकश्रुतिमें ''आनन्दरूपममृतं यद्विभाति'' नृसिंहोत्तरतापिनीमें ''आनन्दरूपः सर्वाधिष्ठानः''

सर्वाधारं वश्यमायमानंदाकारमुत्तमम् ॥
प्रापंचिकपदार्थानां सर्वेषां तद्विलक्षणम् ॥७१॥

जगतःसमवायि स्यात्तदेव च निमित्तकम् ॥
कदाचिद्रमते स्वस्मिन्प्रपंचेऽपि क्वचित्सुखम् ॥७२॥

तत्वदीपप्रकाश :

पुनः श्रुत्युक्तान्गुणानुपसंहरति पूर्वोक्तानां वैदिकत्वाय॥ सर्वाधारम् इति॥

''सेतुर्विधरणः'' इति श्रुतेः॥ गीतायां मायासंबंधस्योक्तत्वान्मायाधीनो भवेदित्याशंक्याह॥ वश्यमायम्इति॥

साकारतामाह॥ आनंदाकरमिति॥ उत्तममक्षरादपि॥ यद्यपि कारणधर्मा एव कार्ये भवंति तथापि कार्यगतत्वेनाऽन्यथाप्रतीतेस्तद्व्यावृत्त्यर्थमाह॥ प्रापञ्चिकपदार्थानामिति॥७१॥

एवं स्वरूपधर्मानुक्त्वा कार्यमाह ।। जगतः समवायि स्यादिति ।।

सर्वस्यापि जगतः कार्यरूपस्य ब्रह्मैव समवायिकारणं तस्मिन्नेवोतंप्रोतं गार्गीब्राह्मणे प्रसिद्धं तदेव निमित्तकारणम् ।। चकारात्कर्तृ च ।।

तस्य प्रपञ्चनिर्माणे हेतुमाह ।। कदाचिद्रमत इति ।। यदा स्वस्मिन् रमते तदा प्रपञ्चमुपसंहरति ।। यदा प्रपञ्चे रमते तदा प्रपञ्चं विस्तारयति ।। प्रपञ्चभावो भगवत्येव लीनः प्रकटीभवतीत्यर्थः ।।७२ ।।

व्रजभाषाटीका

इत्यादिकन् में भगवान्‌को आकार आनन्दरूप है, आनन्दकेही आपके सब अङ्ग हैं यह लिख्यो है। पंचभूतनको रच्च्यो आपको अंग नहिं है, ताहीसों "विजरो विशोको विमृत्युः" या छांदोग्य-उपनिषदकी श्रुतिमें प्रभुस्वरूपमें जरा-मृत्यु- चिन्ता आदि लौकिक देहके धर्म नहिं हैं यह बात स्पष्टलिखी है। तासों यह सिद्ध भयो जिन श्रुतिन्‌में अङ्गन्‌को वर्णन है विनअंगन्‌कूं आनन्दके रचेभयेही जानने। जिनश्रुतिन्‌में अंगन्‌को निषेध है वहां पंचभूतन्‌के बने अंगन्‌की नांई करो है एसे समुझनो। क्योंकि "क्षरः सर्वाणि भूतानि" या गीतावाक्यके अनुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, ये पंचभूत क्षरब्रह्ममें गिने जावें हैं। क्षरब्रह्मसों उत्तम अक्षर ब्रह्म है, अक्षरब्रह्मसों उत्तम परब्रह्म पुरुषोत्तम है, पुरूषोत्तम को आकार पंचभूतन्‌को रच्च्योभयो सर्वथा नहिं होय सकेंहै। ताहीसों "अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्" या गीतावाक्यमें भगवान्‌के श्रीअंगकूं

मनुष्यदेहके समान रुधिरमांसादिकन्को बन्योभयो मानवेवारेन्कूं मूर्ख बताये हैं॥७१॥

अब यह शंका भई कि जगत्कूं भगवान्को कार्य मानो हो तथा भगवान्सों अलग नहिंमानोहो तब तो जगत्में जो जड़पदार्थ वे भी भगवान्कोही रूपहैं। तबतो तुमारे मतमें परब्रह्मभी जड़रूपही भयो। ताको यह उत्तर है- यद्यपि कारणकेही धर्म कार्यमें होवें हैं तथापि कार्यमें वे धर्म ओरही रीतिसों प्रतीत होवेंहैं। तात्पर्य यह है "तदेजति तन्नैजति" इत्यादिश्रुतिन्में ब्रह्मके जो "अनेजत्वादिधर्म" चेष्टारहितता आदि धर्म हैं वेही क्रीड़ाकी इच्छा करिके आनंदचैतन्यकूं छिपायलियेपीछें कार्यमें जडतारूपसों प्रतीतहोवें हैं। क्रीडाकर्ता जो प्रकट सच्चिदानंद पूर्णपुरुषोत्तम हें सो जगत्के जितने पदार्थ हैं उन सबन्सों विलक्षण है॥

संपूर्णजगत्को ब्रह्मही समवायिकारण है॥ समवायिकारण वासों कहेंहैं जामें कार्य ओतप्रोत होय अर्थात् पुररह्यो होय कि जासों कभी अलग नहिं होयसके। जैसे कपडा तागेनमें पुररह्योहै तागेनसो कपडा अलग नहिं होय सकेहै, ऐसेही जगत्भी ब्रह्मसों अलग नहिं होय सकेहै। यह समयावायि-कारणपनो गार्गीब्राह्मणमें वेदमें स्पष्टलिख्योहै। वहां गार्गीने प्रश्न कियोहै, "सब जगत् कोन पदार्थमें (ओतप्रोत) पुररह्योहै ?" तहां उत्तर दियो है : "सब जगत्में ब्रह्मही ओत-प्रोत होय रह्यो है। ब्रह्मही या

जगत्को निमित्तकारण है, तामें "तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः" यह श्रुति प्रमाण है।। ब्रह्मही या जगत्को कर्ता है, तामें "विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः" "तथा तदात्मानं स्वयमकुरुत" इत्यादिश्रुति प्रमाण हैं।।७२।।

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।।

स्यादिदं भगवान्साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः।।७३।।

यःसर्वत्रैव संतिष्ठन्नंतरः संस्पृशेन्न तत्।।

शरीरं तन्न वेदेत्थं योऽनुविश्य प्रकाशते।।

सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्।।७४।।

तत्वदीपप्रकाशः

कार्यादिभावःकश्चिदन्य इत्याशंक्य ब्रह्मवाद स्वरूपमाह।। यत्र येन्इति।।

सर्वविभक्तीनां प्रकारस्य च भगवानेवार्थः।। प्रकृतिपुरुषौ कालश्च स एव ।।७३।।

एवं पूर्वस्थितिमुक्त्वा पश्चात्स्थितिमाह।। यः सर्वत्रैव इति।।

सर्वेष्वेव पदार्थेषु कार्येषु स्वयं तिष्ठंस्तान्यंतरयति स्वमध्ये स्थापयतीत्यर्थः।। तथा स्वयम् आधाराधेयभावं प्राप्नुवन्नपि तन्न स्पृशति।। तर्ह्यज्ञानेन तथा भवतीतिचेन्नेत्याह। शरीरमिति। तत्सर्वमेव शरीरत्वेन मन्यते तस्य च ज्ञापकं भवति सर्वं तथापि न स्पृशति तर्हि शरीरमेव भगवन्तमानन्दनिधित्वात्स्पृशेदिति चेत्तत्राहुः। शरीरं कर्तृ ब्रह्म न वेदेति। इत्थममुना प्रकारेण योऽनुविश्य प्रकाशते। "यः पृथिव्यान्तिष्ठन्पृथिवीमन्तरो यमयति यस्य पृथिवी शरीरं यं पृथिवी न वेद स आत्मा अन्तर्याम्यमृतः यः पृथिव्यांतिष्ठन्" इत्यादिश्रुतेः।

ननु श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण प्रतिपादितत्वादन्योन्यविरोधान्न किञ्चित्प्रमाणं ब्रह्मणि भविष्यतीत्याशंक्याह ।। सर्ववादानवसरम्इति ।।

वस्तुतः श्रुतौ नानावाक्यानाम् एकवाक्यता निरूपित ।। सर्वभवनसामर्थ्येन विरुद्धधर्माश्रयत्वान्नैवंवादिनां वाक्यानि तत्तदंशवाक्यपराणि भवितुमर्हन्ति, तेषां तथा हृदयाभावात् अतः सर्वे वादाः स्वभ्रान्तिपरिकल्पितत्वेन वस्तुस्पर्शाभावाद् अनवसरपराहता-एव ।। अस्तुवादिनां हृदयं यथा तथा वाक्यानां सरस्वतीरूपत्वात्कथं नैकवाक्यतेत्याशंक्याह ।। नानावादानुरोधि तदिति ।। एकैको वादो ब्रह्मणः एकैकधर्मप्रतिपाद-कैकैकवाक्यशेष इति भगवांस्तान् सर्वानिवानुसरति ।।७४ ।।

व्रजभाषाटीका

शंका - भगवान्ने जो अपने स्वरूपसों जगत् बनायो है, जीवन्केलिये बनायो है अथवा अपने लिये बनायोहै, जो जीवन्केलिये भगवान्ने जगत् बनायो है ऐसे कहोगे तो जैसे स्वामीकेलिये अनेक पदार्थ सेवक सिद्ध करें है या प्रकार भगवान्कूं जीवनके आधीन माननेपडेंगे, तो पराधीन होयवेसों ईश्वरताकी हानि होवेगी ।। जो कहोगे के स्वार्थही जगत् बनायो है तो भगवान्को पूर्णकामपनो मिटेहै ।। ताको उत्तर देवेंहैं "देवस्यैष स्वभावोय-माप्तकामस्य का स्पृहा" परंतु "मैच्छत्" ("स द्वितीय मैच्छत ""क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते" इत्यादि श्रुति-स्मृतिन को विरोध होयगो ।) यद्यपि भगवान्कूं कोईप्रकारकी इच्छा नहिं है, तथापि भगवान्को क्रीडा करिवेको स्वभाव है ; जैसे जलको

शीतलता करिवेको स्वभाव है, अग्निको जलायवेको स्वभाव है। जब आप अपने एकरूपमें रमणकरनो चाहेंहैं तब जगत्को उपसंहार अर्थात अपने स्वरूपमें तिरोधान करेंहैं। जब भगवान् आप इकल्ले रमण नहिंकरेंहैं दूसरे पदार्थकी इच्छा करके प्रपंचमें रमणकरेंहै तब जगत्को विस्तार करेंहैं, अर्थात् अनेक-रूप नामके भेदकरिकें क्रीडाकी इच्छा होयहै तब भगवान्के स्वरूपमें छिपोभयो (प्रपंच) जगत् प्रकट हो जावेहै॥

शंका-कार्यकूं सत्य मानोंगे तो भगवान् और जगत् दो पदार्थ भये तो द्वैत भयो, शुद्धाद्वैत नहिं सिद्ध भयो, क्योंकि शुद्धाद्वैतज्ञान वाको नाम है जिस ज्ञानसु भगवान्सों (भिन्न) न्यारो कोई पदार्थ प्रतीत नहिंहोय।

उत्तर- जगत्कूं सत्य मानेंहैं परन्तु भगवान्सों भिन्न नहिं मानेंहैं।

अर्थात् श्लोकार्थ-(जा ठिकाने, जा समय, जासुं, जा रूपमें,जो कछु भी होय हे अथवा रहे हे वो सब आप ही हो। प्रकृति के रूपमें भोग्य, पुरूष के रूपमें भोक्ता तथा इन दोनोंन् के नियामक ईश्वर हु साक्षाद् भगवान् आप ही हो।)

स्कंध १० श्रीभागवतअध्याय ८२ के यत्र येन यतो यस्येत्यादिश्लोकके अनुसार सबविभक्तिनको तथा प्रकारके भगवान्ही अर्थ हैं॥७३॥

शंका- अंतर्यामी जड़ जीवको स्पर्श नहिं करे तबतो अंतर्यामीको और जड़ जीवको परस्पर भेद भयो, सिद्धांत कहां रह्यो ?

उत्तर : सृष्टिदशामें लोकव्यवहार चलवेके लियें इच्छाकरके चैतन्य आनंदके तिरोभाव होयवेंसों जड़-जीव-अंतर्यामीमें परस्पर भेद प्रतीत होवें है परंतु ईश्वरके साथ कोइपदार्थको भेद नहिं है, तासों भगवानसों जड़ जीव अंतर्यामी अलग नहिं हैं। जैसें वृक्षकी शाखा परस्पर एकसों एक न्यारी मालुम पडेंहैं परंतु वृक्षसों कोई शाखाभी न्यारी नहिं हैं, तासों शुद्धाद्वैतमें कोईप्रकारको विरोध नहिं हे।

शंका-श्रुतिन्में अनेकप्रकार लिखें हैं और विनप्रकारन्में आपुसमें विरोध दीखेंहैं । जैसे "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" या श्रुतिमें ब्रह्म सद्रूप है ये बात लिखी है "असदेवेदमग्र आसीत्" या श्रुतिमें ब्रह्म असद्रूप है ये बात लिखी है, या प्रकार बहुतसी श्रुतिन्में परस्पर विरोध है तासों वेदकों प्रमाण नहिं माननों। उत्तर-कृष्ण द्वैपायन वेद-व्यासजीने परब्रह्मरूपवस्तुको स्वभाव जानिके श्रुतिनको विरोध दूरकरकें एकवाक्यता करीहै॥ तात्पर्य यह है कि वेदकों दोष नहिं लगावनों, वेदने तो जैसो ब्रह्मको स्वरूप हतो तैसोही निरूपण कियोहै। ब्रह्ममें सबरूप धारणकरवेकी सामर्थ्य जानके वेदनें ब्रह्मके अनेकरूप वर्णन कियेहैं, तथा लोकमें जिनधर्मन्को परस्पर विरोध दीखेंहैं

वैसे अनेक धर्मन्‌को ब्रह्मकूं आश्रय जानिकें लोकमें एकपदार्थमें नहिंसंभव सके ऐसें अनेकधर्मन्‌को वेदने ब्रह्ममें निरूपण कियो है ।। जैसें लोकमें एकही पदार्थ हाथीके समान तथा मच्छरके समान नहिं होय सके हैं, वेदने एकही ब्रह्मको हाथीके समान तथा मच्छरके समान बतायोहै, और भी अनेक श्रुतिनमें ब्रह्मकी विरुद्धधर्माश्रयताको निरूपण कियोहै, परंतु विवादकरिवेवारेन्‌के वैसे शुद्धहृदय नहिं रहें हैं तासों भ्रममें पडकें अनेकप्रकारके वाद बनायलें हैं।। वे उनके मनके बनाये भये वाद ब्रह्मके स्वरूपको स्पर्श भी नहिं कर सकें हैं। ताहीसों श्रीआचार्यचरण आज्ञा करेंहैं 'सर्ववादानवसरम्' अर्थ- मनके बनाये सब वादको जामें अवसर नहिं है ऐसो ब्रह्मको स्वरूप है।।

कदाचित् कहोगे वादीलोगनके हृदय मनिल होवो अथवा शुद्ध होवो परंतु वाक्यतो जितने हैं वे सब सरस्वती स्वरूप हैं, उनकी तो एकवाक्यता होनी चाहिये।

तहां समाधान करेंहैं "नानावादानुरोधि तत्" अर्थ - एक-एक वाद हैं सो ब्रह्मके एक-एक धर्म को प्रतिपादनकरिवेवारे जो एक- एक वाक्य उनके शेष अङ्गभूत हैं। भगवान् हैं सो सबधर्मन्‌को अनुसरण करेंहैं। जैसे कितनेक नास्तिकादिक ईश्वरकूं नहिंमानेंहैं और शून्य मानेंहैं, कितनेक तुच्छ मानेंहैं, कितनेंक ईश्वरको अभाव मानेंहैं, कितनेक वादी नाश्य मानेंहैं, कितनेक अदृश्य अर्थात् ज्ञानमें

तथा दृष्टिमें नहिंआयसकें ऐसे मानेंहैं, परंतु परमेश्वरमें ये सब बातें घटजावेंहैं, ताहीसों महोपनिषदमें "एष ह्येव शून्य एष ह्येवाव्यक्तोऽदृश्योऽचिन्त्यो निर्गुणश्चेति" ऐसे कह्यो हे। अर्थ- यह ईश्वरही शून्य है, यह ईश्वरही अभाव है, यह ईश्वरही तुच्छ है, यह ईश्वरही अदृश्य है, याहीरीतिके शब्द नास्तिकादिकनके मुखसों निकसें हैं, परंतु इनशब्दनके उनके विचारेभये उलटे अर्थ तो परमात्माको स्पर्शभी नहिं करेंहैं और वाणीरूपा सरस्वती तो ईश्वरमें सुलटीरीतिसों घटजावेंहै। जैसे ऊपरके लिखेभये मंत्रको अर्थ कूर्मपुराणमें लिख्योहै। "शमूनं कुरुते विष्णुरदृश्यः" सन् परं स्वयम्, तस्माच्छून्यमिति प्रोक्तस्तोदनात्तुच्छमुच्यते, नैष भावयितुं शक्यः केनचित्पुरुषोत्तमः, अतोऽभावं वदन्त्येनं नश्यत्वान्नाश इत्यपि"।

अर्थ-ईश्वरके सुखके आगें लोकको सुख बहुतही कम है तासों ईश्वरकों शून्य कहेंहैं। सबनके हृदयमें गुप्त होयकें प्रेरणा करेंहैं तासों तुच्छ कहेंहैं। भगवान्कूं कोई उत्पन्न नहिंकर सकें हैं तासों अभाव कहेंहैं। काल मृत्यु आपको भक्षण नहिं कर सकेंहैं तासों नाश्य कहेंहैं। ऐसेंही दोषवाले पुरुष भगवान्कूं अदृश्य अथवा शून्यरूप मानेंहैं। उनके मतको भगवान् अदृश्य शून्य अभावरूप होयके अनुसरण करेंहैं। अर्थात् उनकूं भगवान् अपने स्वरूपको ज्ञान नहिं करावेंहैं। उनके लियें अदृश्य शून्य अभावरूपही रहेंहैं॥ जे

पुरुष भगवान्कूं पूर्णज्ञानक्रियावान् सर्वेश्वर सच्चिदानन्दरूप मानेंहैं उनकूं ''रस ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'' इत्यादि श्रुत्यनुसार रसरूपस्वरूपको अनुभव करायकें अनन्त आनन्द देंहैं।। या प्रकार नानावादके अनुरोधिहैं अर्थात् अनेक प्रकारके वादी-विवादीके वाक्य भगवान्में घटजावेहैं ।।७४।।

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म कूटस्थं चलमेव च ।।
विरुद्धसर्वधर्माणामाश्रयं युक्त्यगोचरम् ।।७५।।

आविर्भावतिरोभावैर्मोहनं बहुरूपतः ।।
इंद्रियाणां तु सामर्थ्याददृश्यं स्वेच्छया तु तत् ।।७६।।

तत्वदीपप्रकाशः

तत्र ब्रह्मणि विरुद्धधर्माः सन्तीति। ज्ञापनार्थमाह।। अनन्तमूर्तिइति।।

अनन्ता मूर्तयो यस्य ब्रह्म एकं व्यापकं च तेनानेकत्वमेकत्वं च निरूपितम्। एवं गुणविरोधमुक्त्वा क्रियाविरोधमाह।। कूटस्थं चलमेवच इति।। 'एव'कारः सगुणादिभेदविज्ञापनार्थः।। 'च'कारोऽनुक्तविरुद्ध-धर्मसंग्रहार्थः।। वाक्येष्विवात्रापि स्वरूपे विरोधमाशंक्य समाधानार्थं स्पष्टमाह।। विरुद्धसर्वधर्माणामिति।। ब्रह्मैव हि सर्वाधारम्।। यथा भूमिः।। सहजविरुद्धानामपि मूषकादिजीवानां कारणगत एव धर्मः पृथिव्यां भासते।। विशेषेण लौकिकयुक्तिस्तत्र नास्ति।। तदगम्यत्वादित्याह।। युक्तयगोचरमिति।।७५।।

ननु अवतारेषु भगवत्वश्रुतेर्लौकिकप्रमाणविषयत्वमपि कुतो नेत्याशंक्याह।। आविर्भावतिरोभावैरिति।।

आविर्भावोऽवतारो मत्स्यादिरूपेण प्राकट्यम्।। तिरोभावोऽवतारसमाप्तिः।। ते च बहुप्रकाराः स्थावरेभ्यो जंगमेभ्यः स्वतोऽपि भवंति।। ते सर्वे प्रकारा मोहका एव नटवद्बहुरूपत्वात्।। अन्यथा लौकिकयुक्तेर्लंघनं न स्यात्।। नहि मत्स्योऽन्हा योजनशतं वर्द्धते।। नापि क्षणेन पर्वताकारो भवति वराहः।। अतो लौकिकप्रमाण-विषयत्वं नट इव भ्रांतम्।। अतो न लौकिकयुक्तिगोचरत्वमित्यर्थः।।

तथापि कृष्णादयः सर्वे दृष्टा इति कथं लौकिकप्रमाणाविषयत्वं तत्राह ।। इंद्रियाणां तु सामर्थ्यादिति।। चक्षुर्न स्वसामर्थ्येन भगवंतं विषयीकरोति।। किन्तु भगवदिच्छयैव मां सर्वे पश्यंत्वित्येतद्रूपया तद्दृश्यम्।।७६।।

व्रजभाषाटीका

तहां शंका होवें है जो भगवान् विद्यमान हैं तो आपको अभाव अथवा शून्यरूप कैसें होसकेंहैं? जो वस्तु सर्वदा विद्यमान होयहै वाको अभाव नहिंहोयसकेंहैं।।

समाधान : भगवान्में लोकसों विरुद्ध धर्म है, लोकमें भावरूप घटादिक अभावरूप नहिं होयसकेहैं। भगवान् तो ''यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य'' इत्यादि वाक्यानके अनुसार अस्ति -भावरूपहै, तथा नास्ति-अभावरूपभी हैं। ''यदेकमव्यक्तमनन्तरूपम्'' अर्थ-ब्रह्मएक है, व्यापकहै, अनंतमूर्तिवारोहै, लोकमें एक होय सो अनेक नहिंहोय है। भगवान् एक है और अनेक है या प्रकार लोकविरुद्ध गुण दिखायकरकें लोकविरुद्धक्रिया दिखावेंहैं।। ''तदेजति तन्नैजति'' या श्रुतिके अनुसार भगवान् कूटस्थ हैं अर्थात्

अचल हैं तथा चलभी हैं। याहीप्रकारसें गुणादिभेदभी भगवान्में संभव होसकेंहैं॥ यहां विस्तारभयसों नहिं वर्णनकरे ऐसे औरभी वेदोक्त अनेक विरुद्धधर्म भगवान्में हैं।

परस्परविरुद्धधर्म एकपदार्थमें कैसे रहसकेंहैं यह शंका नहिं करनी, क्योंकि ब्रह्मही सबपदार्थन्को आधार है। जैसे भूमि सहजविरोध राखिवेवारे साँप मूषा नाहर-बकरी आदि अनेक पदार्थन्को आधार है॥ जैसे बुद्धि परस्परविरुद्ध (जाग्रत्अवस्था) जागनो तथा (स्वप्नावस्था) सोनो आदि वृत्तिको आधार है वैसेंही ब्रह्म सर्वपदार्थनको आधार है और पृथ्वी आदि पदार्थनमेंभी भगवान्कीही विरुद्धधर्माश्रयता भासमान होवे है। विशेषकरके ब्रह्ममें लौकिकयुक्तिकों पहोंच नहिं है। जैसे वेदमें हजारन मस्तक-कर-चरणारविंदवाले भगवान्कूं बतायेहैं यह बात लौकिकयुक्ति करके गम्य नहिं हैं परन्तु वेदोक्त है तासों अवश्य मानी जावें हैं। ऐसेंही वेदोक्त विरुद्ध धर्माश्रयताभी मानी जावें हैं॥७५॥

शंका-अवतारन्में हमारी लौकिक इंद्रिय बुद्धि आदिकरके भगवान् ग्रहणकरवेमें आवें हैं ऐसेही लौकिकयुक्तिनसों भगवान् जानवेमेंभी आजाने चाहियें।

उत्तर-लौकिक बुद्धि तथा लौकिक इंद्रियनकरिके भगवान् ग्रहण करिवेमें आजावें हैं यह केवल भ्रममात्र है।

जैसे नट अनेक रूप दिखावें हैं और देखवेवारेनकूं यह नाहर है, यह हाथी है, यह राजा है, ऐसो धोखा होजावे है ऐसेही अवतारनमें रामकृष्णादिकनमें यह साधारण मनुष्य है ऐसो धोखा होजावे है। तथा मत्स्यावतार वराहावतार आदिमें साधारण मच्छ तथा साधारण वराह है ऐसो मोह ह्रो जावेंहै। और जितने (आविर्भाव) प्रकट होयवेके तथा (तिरोभाव) अवतारकूँ छिपायलेवेके प्रकार हैं उनमें लौकिकयुक्ति नहिं चलसकेहै। जैसें थंभासों प्रकटहोजानों तथा हंसावतारमें स्वतः प्रकट होजानों, मत्स्यावतारमें शीघ्रही सरोवरके समान होजानों, वाराहावतारमें क्षणमात्रमें पर्वताकार होजानों आदि। तासों लौकिकप्रमाण तथा लौकिकयुक्तिनसों भगवान् नहिं जाने जावें हैं।

यद्यपि लौकिक नैत्रादिकन्सों रामकृष्णादि अवतारके दर्शन होवें हैं तथापि लौकिकप्रमाण करके गम्य भगवान् नहिं हैं, क्योंकि नेत्र आदि इंद्रियनकी भगवान्कूं देखवेकी सामर्थ्य नहिं है। भगवान् की जब सबजीवनकूँ अपनो स्वरूप दिखायवेकी इच्छा होवे है तब ही नेत्रआदि इंद्रियद्वारा आप दीखवेमें आवेंहैं, नेत्र आदि इंद्रिय अपनी सामर्थ्यसों देवतानकोंभी नहिं देख सकेंहैं तब अवतारनको कैसे देखसकेंगे ॥७६॥

आनंदरूपे शुद्धस्य सत्वस्य फलनं यदा॥

तदा मरकतश्याममाविर्भावे प्रकाशते॥७७॥

चतुर्युगेषु च तथा नानारूपवदेव तत्॥
उपाधिकालरूपं हि तादृशं प्रतिबिंबते॥७८॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु "रूपवद् द्रव्यं चाक्षुषम्" इति महत्त्वादुद्भुतरूपत्वाच्च कुतो न चाक्षुषत्वं तत्राह॥ आनंदरूपे इति॥

आनंदरूपे आनंदएव ब्रह्मणि रूपस्थानीयः॥ तत्र शुद्धस्य सत्वस्य देवतारूपस्य भगवदिच्छया भगवदासनत्वेन स्फुरितस्य श्यामत्वात्॥ तस्य प्रतिफलेनेनानंदो नीलमेघवद्भासते इत्यर्थः॥ तथा स्फटिको जपाकुसुमेन॥ श्वेतपाषाणेषु प्रविष्टोऽपि स्फटिको जपाकुसमलौहित्यं गृह्णन्पाषाणेभ्यो वैशिष्ट्यमात्मनः प्रतिपादयति॥ तथा ब्रह्मापि जगति पुराणेषु प्रकटीभवत्तच्छयामत्वादि गृह्णद् ब्रह्मत्वमपि ख्यापयतीतिभावः॥

सत्वरजस्तमसां नील-रक्त-श्वेतरूपतेति गुणावतारवाक्यैः निर्णीयते ॥७७॥

उपपत्त्यंतरमाह॥ चतुर्युगेषु च तथेति॥

"कृते शुक्लश्चतुर्बाहुः" इति वाक्यात्॥ अन्यथा नित्यं रूपं न स्यात्॥ तत्रापि हेतुमाह॥ उपाधीति॥ उपाधिकालः सत्वादिदेवतारूपः॥ तस्य रूपं ब्रह्मणि प्रतिबिंबते कालविशेषे रूपविशेषस्तदाधारत्वेन ब्रह्मणि स्फुरितो ब्रह्मत्वं संपादयीत्यर्थः॥७८॥

व्रजभाषाटीका

शंका-जो प्रकटरूपवारो पदार्थ होवेहै वाकूं नेत्र देखसकेंहैं यह नियम है। भगवान् जो प्रकटरूपवारे हैं तो जरूर नेत्रकरिकें दीखने चाहियें।

उत्तर-जो मायिक लौकिक प्रकटरूपवालो पदार्थ होवे है वाकूं नेत्र देखसकें हैं यह नियम है, ब्रह्ममें तो लौकिक मायिक रूप नहिंहैं तासों नेत्र नहिं देखसकेंहैं। याहीसों कहीं कहीं अरूप ब्रह्मको नाम है, अर्थात् मायारचित रूप ब्रह्ममें नहिं है। ब्रह्मके विषें तो आनन्द है सोही रूपके स्थानमें समझनो। इच्छाकरकें आनन्दही रूपात्मक भासमान होवेहै। लौकिक रूप भगवान्में नहीं है ताहीसों नेत्र आदिक इंद्रिय अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कूं नहिं देखसकेंहैं, तासों आसुर सब जीवनकूं नेत्रन्की सामर्थ्यकरके जो अवतारादिकनके दर्शन भये सो औपाधिकमायिक-रूपके ही भये आनन्दमयरूपके नहीं भये। आनन्दमय रूपके दर्शन उनही जीवनकूं भये जिनकूं अनुग्रहपूर्वक इच्छाकरके करवाये॥ तहां साधारण जीवनकूं जैसे दर्शन भये तामें दृष्टान्त दें हैं, जैसे श्वेत पाषाणके मध्यमें (जपाकुसम) लालफूलके ऊपर स्वच्छ स्फटिकमणि धरी होवे है तब देखवेवारेकूं स्फटिकमणिको स्वाभाविक रंग तो नहिंदीखे है लालरंगही मणिको दीखे है, तथापि और समीपके श्वेतपाषाणकी अपेक्षा मणिमें चिलक अधिक दीखे है, ऐसें ही साधारण जीवनकूं अवतारको आनंदमयरूप तो नहिं दीखे है इच्छा करकें भगवान्ने सत्वगुणके देवताकों आसनरूपसों स्फुरणकरि राख्यो है, वाकी जो आनंदमें झांई पडें है तासों वह आनंदनीलमेघके समान भासमान होवें है।

और जैसें लालफूलकरिके स्फटिकमणि लाल मालुम पडवे लागजावें है तथापि और पत्थरनबीच चिलक अधिक रहें है, ऐसेंही भगवान् ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि गुणावतारन्में मायाके सत्वगुण रजोगुण तमोगुणकरिके श्याम लाल श्वेतरूपसों भासमानहोवेंहै, तथापि और जीवनकी अपेक्षा उनरूपन्में ब्रह्मत्व प्रकटराखेंहैं। क्योंकि भगवान् जा पदार्थमें स्थितरहेंहैं वापदार्थकूं अपने भीतर स्थितकरलेंहैं। जैसें अग्नि लोहके गोलामें स्थित होयके लोहके गोलाकूं अपने भीतर स्थितकरिके आप बाहिर प्रकटहोय जावे हैं, यह बात अन्तर्यामी ब्राह्मणमें लिखी है॥ या प्रकार (मायिक) औपाधिकरूपको ब्रह्ममें अंगीकार कियो जाय तो भी मायिकरूपमात्रही नेत्रन्की सामर्थ्यसों दीखसके हैं। भगवान्के तो दर्शन इच्छा आनंदकरिकेंही हो सकें हैं॥ लौकिकनेत्रादि इंद्रियन्की सामर्थ्यसों भगवान्को दर्शन नहिंहो सकें है। इतने विस्तार करके भगवान् इंद्रियन्के गोचर नहिं हैं यह बात सिद्ध भई।। या प्रकारही पृथ्वी में नीलरूपतासों आपको आविर्भाव है, जलमें प्राणमें श्वेतरूपतासों, तेजमें रक्तरूपतासों तथा वायुमें पीतरूपतासों आपको प्राकट्य समुझनो। युगावतारन्में भी याहीरीतिसों वर्ण विभाग आगेंके श्लोक में दिखावें हैं॥७७॥

सत्ययुगको अभिमानी देवता कालको जब भगवान्के आधाररूपसों स्फुरण होवें है तब वाकी श्वेत झांईसों

भगवान्को श्वेतरूप सत्ययुगमें भासमान होवेहैं। याहीप्रकार त्रेता-द्वापर-कलियुगके रक्त-पीत-श्यामदेवतान्की झांईकरिकें उन-उनयुगनूमें भगवान् रक्त पीत श्यामरूपसों भासमानहोवें हैं और पहिले कहे अग्नि गोलाके दृष्टान्तानुसार अपने आधारभूत कालाभिमानी देवतान्कूं आप अपने भीतर स्थित करिकें वाकूंभी अवतीर्णब्रह्मत्व संपादनकरें हैं॥ या रीतिसों प्रतिफलनकरके ब्रह्मत्व सिद्ध कियो। तथा नेत्रनूकी सामर्थ्यसों जो भगवान्को रूप दीखवेमें आवेंहै वाकूं प्राकृतता सिद्ध करी॥

अब भगवान्के आनन्दकारमें मायिकपणेकी शंका दूर करिवेकेलिये मुख्य सिद्धान्तके अनुसार "आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्" "शबलात् श्यामं प्रपद्ये" इत्यादि-श्रुतिनमें लिख्योभयो जो कृष्णको अप्राकृत अलौकिकरूप है ताको वर्णन करैंहैं॥७८॥

अथवा शून्यवद्गाढं व्योमवद् ब्रह्म तादृशम्॥
प्रकाशते लोकदृष्ट्या नान्यथा दृक् स्पृशेत्परम्॥७९॥

तत्वदीपप्रकाशः

एवं प्रतिफलत्वेन ब्रह्मत्वं प्राकृतरूपवत्वं च साधयित्वा प्रकारांतरेण रूपवत्त्वं साधयति॥ अथवेति॥

यथा मेघादिरहिते देशे आकाशे नीलिमा प्रतीयते॥ चक्षू रूपवद्द्रव्यं गृह्णत्तदभावे दूरंगतं सन् नीलमिव पश्यति॥ तथांधकारम्॥ नैतावता आकाशे अंधकारे वा रूपमस्ति॥ तथा ब्रह्माप्यतिगाढं गंभीरतया

नीलमिव भातीत्यर्थः।। अनेनाचाक्षुषत्वमपि स्थापितं भवति।। पूर्वापेक्षया अयं पक्षो महानिति ज्ञापयितुमाह।। नान्यथा दृक् स्पृशेत्परमिति।। "परांचि खानि" इति श्रुतेः।। परं चक्षुर्न स्पृशत्यन्यथा परत्वमेव न स्यादिति।। यद्वा एवं नीलरूपत्वेन निराकारत्वं ब्रह्मण्यायातीत्यरुच्या पक्षांतरमाह।। अथवेति।। उक्तव्याख्यानेपि तथा।। एवं नीलिमभानोपपत्तावपि पीतवसनादिभानानुप - पत्त्यपरिहारादपसिद्धांतत्वाच्च व्याख्यानांतर-मुच्यते ।। ब्रह्म तादृशमिति। यादृशं दृश्यते तादृशमेव तद्वस्त्वित्यर्थः।।

तत्रानेक रूपत्वेना ब्रह्मत्व माशंक्य निरस्यति दृष्टांतेन ।। गाढं घनीभूतं सैंधवं लवणमिति यावत् ।। तद्यथान्तर्बहि श्चैकरूपरसं तथा ब्रह्मानेकरूपत्वेन भासमानमपि शुद्धमेवेत्यर्थः ।। स यथा सैंधवघन इत्यादिधर्मिग्राहिकमानात्तत्तादृगेव मंतव्यमिति भावः।। तर्हि "पराञ्चिखानि" इति श्रुतेर्दृग्विषयत्वानुपपत्तिरित्यत आह।। शून्यवद्व्योम-वल्लोकदृष्ट्या ब्रह्म न प्रकाशत इति शून्यगृहादौ वस्त्वभावादेव यथा न किंचिद्दृश्यं भवति तथेत्यर्थः।। दर्शनं हि द्वेधा तदर्थप्राकट्येन साधारण्येच्छया वा।। तत्राद्याभाववत्स्वयं दृष्टांतस्तेषा-मासुरभावाद्यथोक्तब्रह्मानंगीकारात्तादृक् तत्तान्प्रत्यसदिवेति भावः।।

यद्वा शून्यं तम उच्यते।। तेन तद्वद्गृहादिर्लक्ष्यते तत्र यथा सदपि वस्तु प्रकाशकाभावन्न भाति तथेदमनुग्रहा-भावात्तथेत्यर्थः।। अनवतारदशायां तथेच्छाभावाद्व्योमवत्तथेत्यर्थः। रूपाभावाद्यथा तदयोग्यं तथेदमपीति भावः।। इच्छा तत्र रूपस्थानीया ज्ञेया।। दर्शने हेतुमाह।। अन्यथेति।। अन्यथा उक्तवैपरीत्येन तदनुग्रह-तदिच्छाभ्यां दृक्परं हरिं स्पृशेदित्यर्थः।। यद्वा।। जलेन न शून्या अशून्याः।। सजलमेघाः इति यावत्।। तद्वद् व्योमवच्च श्यामं स्वरूपं लोकदृष्ट्या यत्प्रतीयते तद्ब्रह्म न तूराधिरौपाधिकं चेत्यर्थः।

ननु अत्रउपपत्तिः केत्यत आह।। तादृश-मिति ।। तद्वस्त्वेव तथेत्यर्थः ।। न हि वस्तुस्वरूपमुपपत्तिमपेक्षत इति भावः ।। उपपत्तिम-प्याह ।। अन्यथा यदि शुद्धं ब्रह्म न स्यात्तदा अदृक् न विद्यते दृक् ज्ञानं यस्य स तथा पशु-पक्षि-वृक्षादिः परं प्रकृतिकालाद्यतीतं न स्पृशेत्न प्राप्नुयादित्यर्थः । अथवा । अन्यथा शत्रुत्वेन ज्ञानं यस्य स पूतनादिः प्रकृत्याद्यतीतं न स्पृशेत् न प्राप्नुयादित्यर्थः । अस्य तर्करूपत्वादापादकं यदि ब्रह्म न स्यादिति रूपमर्थादेव प्राप्यत इति नोक्तम् ।।७९ ।।

ब्रजभाषाटीका

"तस्य हैतस्य पुरुषस्य रूपं यथा महाराजानं यथा पाण्ड्वाविकं यथेंद्रगोपो यथाग्न्यर्चिः" ।। इत्यादिश्रुतिन्में इंद्रगोप मणि, अग्निज्वाला आदि पदार्थन्के समान परब्रह्म श्रीकृष्णको रूप लिख्यो है सो रूप मायारचित नहिं है किन्तु ब्रह्मात्मक कही है।। "यन्मायया मोहिताश्च ब्रह्मा-विष्णुशिवादयः।। एवं सर्वे प्राकृताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना" या ब्रह्मवैवर्तप्रकृतिखंडके वाक्यमें भी और देवतान्कूं ही प्रकृति लिखेंहैं।। श्रीकृष्णको तो स्वरूप निर्गुणही है परंतु अत्यन्त गंभीर और अनवगाह्य है, अर्थात् जा स्वरूपको दृष्टि अन्त नहिंपायसके ऐसो आपको स्वरूप है, तासों लोकदृष्टिकरकें नील जैसो मालुम पडेहै। वस्तुतः नीलगुणवारो आपको स्वरूप नहिं है किन्तु वस्तुही वह वैसीही है। निजसामर्थ्यसोंही नील भासमान होवेहै।।

न्यायके चोईसगुणन्में जो 'रूप' नाम को गुण लिख्यो

है सो ब्रह्ममें नहिंहै। ब्रह्म 'रूप' गुणरहित है तोभी गंभीर है, तासों अपने स्वभावसोंही नील भासमान होवेहै, तामें दृष्टांत जैसे अन्धकार तथा आकाश 'रूप' गुण रहित है तोभी गंभीर है तासों अपनी सामर्थ्यकरकेंही नील भासमान होवेहै। दृष्टितो रूपकूं ग्रहण करवेवारी है, आकाशमें तो रूप नहिं दीखेहै, तब दृष्टि अत्यन्त दूरीगईभई नीलरूपकूं जैसो देखे है तैसें आकाशकूं देखेंहै, तासों आकाशमें रूप है ऐसे नहिं जाननों किन्तु रूप रहितही आकाश गंभीरतासों नीलरूप जैसो भासमान होवेहै। ऐसेही ब्रह्म गंभीर है तासों नीलरूप जैसो भासमान होवेंहै॥ जब आप गंभीरताकूं नहिंदिखावें हैं तब आपको स्वरूप जैसो श्रुतिमें लिखआयेहैं वेसोही दर्शन्में आवेंहै। जैसे "बदरपांडुवदनो मृदुगण्डम्" या भागवतके श्लोकमें वर्णन है॥ कृष्णचन्द्रके व्रजभक्तनकूं बेरके समान पांडुवदनके अर्थात् पीतगौरमुखारविंदके दर्शन भये॥ इतने विस्तारकरके भगवान् रूपरहित हैं तासों नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कूँ नहिं देखसकेंहैं, जो नेत्र और चीजनकूं जैसें देखसकेंहैं तैसें भगवान्कूँभी देख सकते होंय तो जैसें औरपदार्थ नेत्र आदि इंद्रियन्सों पर नहिंहैं तैसे भगवान्भी नेत्रादिइंद्रियन्सों पर नहिं कहावेंगे ! तासों नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कूं नहिंदेखसकेंहैं यह सिद्ध भयो॥ याहीसों "पराञ्चि खानि" या श्रुतिमें उलटी इंद्रियें ब्रह्मको स्पर्श नहिंकरसकेंहै यह बात लिखी है। यासों यह शंका

नहिं करनी कि भगवान्‌में रूप इंद्रिय कछु भी नहिं है। तब तो आप जा भक्तकूं दर्शन देनों चाहतेहोंयगे वाकूं भी कैसें दर्शन देतेहोंयगे, क्योंकि दर्शन देनो चाहेंहैं वाकूं तो हस्तचरणारविंदादिक इंद्रिय तथा रूपादिगुण सच्चिदानन्दात्मकही दीखेंहैं ।।७९।।

आत्मसृष्टेर्न वैषम्यं नैर्धृण्यं चापि विद्यते ।।
पक्षांतरेऽपि कर्म्म स्यान्नियतं तत्पुनर्बृहत् ।।८०।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं लौकिकत्वदोषं परिहृत्य कर्तृत्वेन वैषम्यनर्धृण्ये प्राप्ते परिहरति।। आत्मासृष्टेरिति।।

"स आत्मानं स्वयमकुरुत" इतिश्रुतेः।। जगति नानाविधान्सृजन्नपि न विषमो भवति। नापि क्रूरं कर्म कुर्वन्निर्धृणो भवति।। चकारादन्येऽपि दोषाः परिह्रियंते।।

अत्र मतांतरमाशंक्य परिहरति।। पक्षांतरेपीति।। "वैषम्य-नर्धृण्येन सापेक्षत्वात्" इति बादरायणः।। कर्मसापेक्षत्वान्न विषम इत्याह।। तथा सति कर्म नियतं नियामकं भवेत्।। परं तत्कर्म किमिति विचारणीयम्।। ब्रह्म चेत्स दोषस्तदवस्थः।। अन्यच्चेद्ब्रह्मणस्तत्सा-पेक्षत्वादसमर्थत्वम्।। तद्धेतोरेवास्त्विति न्यायेन कर्मण एव तत्समाधाने ईश्वरकारणता न संभवेत्।। हेतुव्यपदेशश्च विरुद्ध्येत।।

नापि लोकवद्दूषणस्थापनं युक्तम्।। अत आत्मसृष्टेरित्येव हेतुः।। सूत्रं तु लोकबुद्ध्यनुसारि।। अन्यथा "फलमत उपपत्तेः" इत्यधिकरणं विरुद्ध्येत।।८०।।

ब्रजभाषाटीका

याही श्लोककी श्रीगुसाँईजीने करीभई व्याख्याको वर्णन करेंहैं। भगवान्को स्वरूप जैसो अनुग्रहवारे कृपापात्र भक्त देखेंहैं तैसोही माननों चाहिये॥ अनेक रूप होयवेंसों ब्रह्मपणों नहिं मिटेहै, यामें दृष्टांत देतहैं॥ जैसो गाढो अर्थात् सघन सैंधव लवण बाहिर भीतरसों एकरस रहेहैं ऐसेंही अनेकरूपवारो ब्रह्मभी सदा एकरस तथा शुद्ध रहेहै।

"पराञ्चि खानि" या श्रुतिसों ब्रह्म नहिं दीखेहै ऐसो तात्पर्य निकसे है, तासों तो लोकदृष्टिसों नहिंदीखे है यह बात समुझनी। तामें दृष्टांत जैसें सूनेघरमें कोई पदार्थ नहिंदीखेहै, क्योंकि वहां दीखवेलायक कोई पदार्थ नहिंहै ऐसेंही लोकदृष्टिकरिकें दीखवेलायक पदार्थ लौकिकरूप है और ब्रह्ममें लौकिकरूप नहिंहै तासों लोकदृष्टिसों शून्यके समान ब्रह्म नहिं प्रकाशमान होवेहै।

अर्थात् दर्शनहोयवेके दो प्रकार हैं, एकप्रकार तो यह है कि जाकेलियें भगवान् प्रकट होंय वह दर्शन करि सकेहै, दूसरो प्रकार यह है कि जिन जीवनकूं और मनुष्यन्के समानही अपनोभी स्वरूप दिखायवेकी भगवान्की इच्छा होवेंहै तब और मनुष्य जैसेंही भगवान्भी दीखेंहैं और जिनकेलियें प्राकट्य नहिंहै ऐसे आसुरजीव शास्त्रोक्त ब्रह्मकूं असत् मानें है अर्थात् झूंठो मानेहैं उनकूं भगवान् असत् जैसेंही दीखेंहैं॥ सूनें घरमें कछु नहिं दीखें हे तैसें भगवान्

नहिं प्रकाशमान होवेंहैं, क्योंकि "मायेत्यसुरास्तं यथायथोपासते" या मंडलब्राह्मणकी श्रुतिमें जो जैसी उपासना करे है वाकूं वैसेही भगवान् भासमान होवेंहैं यहलिखी है॥ अथवा 'शून्य'नाम अंधकारको है जैसे अंधकारवारे घरमें दियाबिना धरीभई वस्तुभी नहिंदीखेंहै ऐसें अनुग्रहविना अवतारसमयमें विद्यमानभी भगवान् नहिंदीखें हैं॥ जासमय अवतार नहिंहोय वासमयतो स्वरूप प्रकट नहिंहैं तासों रूपरहित आकाश जैसें नहिंदीखेहैं तैसें भगवान्भी नहिंदीखेंहैं॥ वहां इच्छाकूंही रूपके ठिकाने समुझनो॥ जैसें रूप नहिंहोय तोपदार्थ नहिं दीखसकेंहै तैसें इच्छा नहिंहोयतो भगवान् नहिं दीखसकेंहैं॥ अन्यलोगन्को दृष्टिकरिकें ही जब आप अपनो रूप दिखानो चाहेंहैं तब भगवदनुग्रह-भगवदिच्छाकरिकें लोकदृष्टिभी हरिको स्पर्श करेहै॥ जैसें महाभारतमें अश्वमेधपर्वमें उत्तङ्ककूं लोकदृष्टिकरिकेंही भगवान्ने दर्शन कराये। उद्योगपर्वमें कौरवनकूंभी लोकदृष्टिकरिकें ही दर्शन कराये। या पक्षकूं हृदयमें राखिकें दूसरो अर्थ करेंहैं॥ जलसों भरे (मेघ) बादल जैसे श्याम तथा आकाश जैसों श्यामस्वरूप लोकदृष्टिकरिके जो प्रतीत होवेंहै वह ब्रह्महीं है॥ उपाधि अथवा औपाधिक मायिक नहिं है, क्योंकि वह वस्तुही वैसी है॥ वस्तुस्वरूप युक्तिकी (उपपत्तिकी) अपेक्षा नहिं करेहै॥ ज्यो श्रीकृष्ण शुद्ध परब्रह्म न होते तो ज्ञानरहित पशु-पक्षी-वृक्षादिकन्कूं

प्रकृतिकालसों पर निजरूपकी प्राप्ति नहिंहोती। अथवा जो आप परब्रह्म न होते तो भगवानूकूं अपने शत्रु जानवेवारे पूतनादि दैत्य प्रकृति-कालातीत भगवानूके स्वरूपकूं नहिं प्राप्तहोते ॥

इन कहेभये प्रकारन् को अपने- अपने अधिकारानुसार उपयोग है ॥ उत्तमाधिकारीकूँ तो पुष्कल ज्ञान सिद्ध होयवे के लिये इन सर्वपक्षनूको ज्ञान होनों चाहिये, याप्रकार भगवानूमें लौकिकदोषको परिहार कियो ॥८०॥

स एव हि जगत्कर्ता तथापि सगुणो न हि ॥
गुणाभिमानिनो ये वै तदंशाः सगुणाः स्मृताः ॥
कर्ता स्वतंत्रएव स्यात्सगुणत्वे विरुद्ध्यते ॥८१॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु अस्तु कर्मसापेक्षएव कर्ता सगुणत्वादित्याशंक्याह। स एव हि जगत्कर्तेति ॥

यस्तूच्चावचं सृजति स एव जगत्कर्ता नापि सगुणः ॥ हेतुसिद्ध्यर्थं सगुणस्य ल क्षणमाह ॥ गुणाभिमानिनः इति ॥ ''गुणैः कृत्वाभिमानिनः'' अनेन देंहेंद्रियाभिमानाभावेऽपि गुणाभिमानमात्रेणैव सगुणत्वम् ॥ ते गुणाः सृष्ट्यादिहेतवोऽनधिष्ठिताः पुनर्न कुर्वंतीति गुणाधिष्ठात्र्यो देवताः ब्रह्मादयः सगुणाः उच्यंते तेषां स्वातंत्र्यमाशंक्याह ॥ तदंशा इति ॥ तत्र प्रमाणं स्मृता इति ॥ स्मृतिपुराणेषु तथा प्रसिद्धेरित्यर्थः। भगवांस्तु सर्वात्मा सर्वनियंता मूलकर्तेति न सगुणः ॥ बाधकमाह ॥ कर्ता स्वतंत्र एव स्यादिति ॥८१॥

व्रजभाषाटीका

अब भगवान् जगत्के कर्ता हैं तो कोई जीवकूं हंस तथा कोई जीवकूं काक बनावेंहैं ऐसी विषमता क्यों होनी चाहिये? तथा कोईकूँ सुखी, कोईकूँ दुःखी राखें हैं ऐसो निर्दयपणों क्यों होनो चाहिये ? इन दोनों दोषन्को परिहार श्लोकमें करेंहैं ।

"स आत्मानं स्वयमकुरुत" या श्रुतिके अनुसार भगवान् अपने आत्माकूंही जगद्रूप करेंहैं । अर्थात् आपही सर्वरूप होरहेंहैं । तासों भगवान् ऊंची- नीची गज- गर्दभ आदि अनेक जाति रचते भयेभी विषम नहिं कहावें हैं, तथा कोईको सुखी कोईको दुःखी करतेभयेभी निर्दय नहिंकहावेंहैं, क्योंकि लोकमेंभी औरकूं दुःखदेवे-वारोही निर्दय कहावेहै ।। जो समर्थ पुरुष क्रीडा के लियें कभी राजा कभी कंगाल बनजावे तथा कभी सुखी कभी दुःखी अपनी इच्छाकरकेही बनजावे वाकूं कोई विषम वा निर्दय नहिंकहेंहैं, ऐसेही अवतारन्में जो आसुर जीवन्कूं मोह करायवेकेलियें युद्धसों भागनो, कहिं अज्ञान दिखादेनों, कहिं भक्तवश होयकें बंधनमें आयजानों इत्यादि अनेक चरित्रन्कूँ दूषणरूप नहिं समुझनो, किन्तु ऐसे चरित्र क्रीडाके भूषणरूपहीहैं ।।

कितनेक मतवादी कर्मकूंही सुख-दुःखको देवेवारो मानें

हैं ईश्वरकों नहिं मानेंहैं, उनसों यह पूछनो चाहिये कर्म तो जडपदार्थ है, सुखदुःख कैसे देसकेहै। कर्मानुसार सुख-दुःख देवेवारो और चेतनपदार्थ मानलेनो चाहिये॥

कदाचित् कहोगे कर्मको नियम करिवेवारो और कोई नहिं है। पहिलीको कर्मही कर्मको नियम करिवेवारो है। अर्थात् पूर्वजन्मको सुकर्म या जन्ममें सुकर्ममें प्रवृत्ति करावे है तथा पूर्वजन्म को कुकर्म या जन्ममें कुकर्ममें प्रवृत्ति करावे है। ताको यह उत्तर है पूर्वकर्मकरकेंहि कर्ममें प्रवृत्ति होजातीहोय तो वेदके विधिवाक्यन्को कर्ममें प्रवृत्तिकरवानो वृथा हो जायगो, तासों उन वाक्यन्कूं सार्थककरिवेकेलियें सुकर्ममें प्रवृत्ति करायवेवारे वाक्यन्के आधीन सुकर्मकूं माननो पडेगो॥ कुकर्मकी नाँई करवेवारे वाक्यन्के आधीन कुकर्मकूं माननों पडेगो तब तो सबही मनुष्य वेदवाक्यन्कूं पढकें वा सुनके सबही कुकर्म सूँ निवृत्त हो जायँगे और सुकर्ममें प्रवृत्त होजाँयगे, अधर्म कोईभी नहिं करेंगे । तो नरक बनानों भी वृथा होयगो, अधर्मके प्रायश्चित्त बतायवेवारी स्मृतियें वृथा जाँयगी, तथा लोककी अधर्ममें प्रवृत्ति होयरहीहै सोभी नहिंहोनी चाहिये। तासों धर्माधर्मके स्वरूप जा़नवेवारे मनुष्यकूंभी निज इच्छाके अनुसार पुण्यपापमें प्रवृत्तिनिवृत्ति करायवेवारो स्वतन्त्र कर्ता ईश्वर जरूर माननो चाहिये॥

शंका- कितनेक मतवादी कहेंहैं के ईश्वरतो कर्मके अनुसार सुख-दुःख देत है, उनके मतमेंभी कर्मके आधीन ईश्वर भयो ईश्वर समर्थ नहिंभयो, तासों सुख-दुःखके मुख्य हेतु कर्मकूं सुखदुःखकारण माननों उनके मतमें उचित भयो।

समाधान- यदि ये मत उचित है तब तो ईश्वरही सुखदुःको देवेवारो है या रीतसों कहवेवारी सब स्मृति व्यर्थ भई॥ जैसें गीताजीमें "सुखंदुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च॥ भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग् विधाः" अर्थ कृष्ण कहे हैं प्राणि मात्रके सुखदुःख भय अभय मेरे करेभये होवें हैं। तथा "स एव साधु कर्म कारयति" या श्रुतिमें जीवकूं उपरके लोकमें लेजायवेकी इच्छा होवेहैं वासों सुकर्म करवावेंहैं॥ जा जीवकूं नीच्चेंके लोकमें लेजावेकी इच्छा होवेहै वासों कुकर्म करवावेंहैं यह लिखी है ताको विरोध आवेगो तासों आत्मसृष्टिपक्ष माननों और लौकिक ईश्वर राजादिकन्के समान सर्वेश्वर भगवान्में दोष नहिं लगावनो। "वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्" तो यह सूत्रतो लोकबुद्धिके अनुसार है, जो या सूत्रको अर्थ वादीके मतके अनुसार मानोगे तो "फलमतः" या सूत्रमें भगवान्ही सुख दुःखादि सब फलके दाता हैं यह बात लिखी है तासों विरोध आवेगो॥

शंका-सगुण है तासों कर्मसापेक्ष ईश्वरही कर्ता होवे हे ।

अभिप्राय यह है गुणाधीन होयवेंसों जैसें ईश्वरताकी हानि नहिं तैसें कर्माधीन होयवेसोंभी ईश्वरताकी हानि नहिं होवे हे ॥

उत्तर- जो उच्चावच सृष्टिकों सृजें है वोही जगत्कर्ता है, परंतु सगुण नहिं है॥ गुणन् करके अभिमानी जे ब्रह्मादिक देवता हें वेही सगुण कहावेंहैं॥ यद्यपि हम देहेंद्रियवारे हैं ऐसो अभिमान ब्रह्मादिकन्कूं नहिंहै तथापि विना अधिष्ठाता देवताके सत्व-रजस्-तमोगुण स्वयं सृष्टिकार्य नहिं कर सकेंहैं तासों गुणके अभिमानी ब्रह्मादिक देवता हैं, वेही गुणन्के अधिष्ठाता देवता हैं, वेही सगुण कहावेंहैं, वे सब देवता ब्रह्म के अंशरूप हैं अतः परतन्त्र हैं, यह बात "यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः" "आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे विष्णुः" इत्यादि पुराणस्मृतिमें प्रसिद्ध है॥८१॥



परमतनिराकरण

केचिदत्रातिविमलप्रज्ञाः श्रौतार्थबाधनम् ।।
कृत्वा जगत्कारणतां दूषयंति हरौ परे ।।८२।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं स्वमतं स्थापयित्वा परमतनिराकरणाय भगवन्तं सगुणं मन्यमानानुपहसति ।। केचिदत्रेति ।।

अतिक्रांता विमला प्रज्ञा येभ्यः ।। तत्र हेतुमाह ।। श्रौतार्थबाधनमिति ।। श्रुत्या अभिधया वृत्त्या योऽर्थ : प्रतिपाद्यते प्रकरणानुरोधेन स एव श्रुत्यर्थः ।। तत्र "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" "भृगुर्वै वारुणिः" इत्यादि ब्रह्मप्रकरणेषु निःसंदग्धेषु ब्रह्मण एव केवलस्य जगत्कारणत्वं प्रतिपादितं तत्सामान्यादितरेष्वपि संदिग्धेषु व्याससूत्रेषु तथैवार्थो निर्णीतः । तदुभयं बाधित्वा वाक्याभासं युक्तयाभासं च पुरस्कृत्य ब्रह्मणो जगत्कारणतां दूषयन्ति ।। परो हरिः पुरुषोत्तमः परं ब्रह्मेति यावत् ।।८२।।

व्रजभाषाटीका

भगवान् तो सर्वात्मा रूप है तासों गुणरूपभी आपही है सबके नियंता है मूलकर्ता है तासों सगुण नहिं है जो भगवान् सगुण होवें तो गुणाधीन होयवेंसों स्वतन्त्र कर्तापनो जो श्रुतिपुराणनूमें लिखो है तासों विरोध आवेगो ।।

कितनेक अतिबिंबविमलबुद्धि व बारे अर्थात् निर्मलबुद्धि जिनको उल्लंघन करगईहै ऐसेपुरुष पहिले ब्रह्मकूं जगत्को कारण मानकरकें कारण-ताको खंडन करेंहैं। शुद्ध ब्रह्महि जगत्को कर्ता है येही श्रुतिनको मुख्य अर्थ है ताकूं नहिंमानें है॥

तहां छांदोग्य उपनिषद्में "सदैव सौम्येदमग्र आसीत्" या श्रुतिमें जगत्की उत्पत्तिके पहिले अप्रकटस्वरूप केवल सद्रूप एक परब्रह्महीको वर्णन करकें शुद्धब्रह्मसोंही तेज आदि पदार्थन्की उत्पत्ति कही है तासों शुद्धब्रह्मही जगत्को बीज है यह सिद्ध होवेहै। ऐतरेयउपनिषद्मेंभी परमात्मासोंही जल आदि पदार्थन्के क्रमकरके लोकपालादिकनकी सृष्टि कहीहै ऐसेंही तैत्तिरीयउपनिषद्में ब्रह्म सच्चिदानंदरूप है ऐसे लक्षण कहिकें "तस्मादात्मन आकाशः संभूतः"। वा ही शुद्ध सच्चिदानंदस्वरूप परब्रह्मसों आकाश आदि सबजगत्की उत्पत्ति वर्णनकरी हे॥ इनवाक्यन्मे मायाशबलित ब्रह्मसों जगत्की उत्पत्ति कहीं नहिं वर्णनकरीहै । तासों व्यासजीने शुद्धपरब्रह्मकूंही जगत्कारण कह्योहै॥ तथा इनवाक्यान्के समान जिनवाक्यन्में आकाश प्राण आदिकन्सों सृष्टि वर्णनकरी है उन वाक्यन्मेंभी "आकाशस्ताल्लिङ्गात् अतएवप्राणः" इत्यादि सूत्रनकरिकें "आकाश" "प्राण" आदि शब्दन्कों ब्रह्मके वाचक कहिकें शुद्धब्रह्मही जगत्को कारण है यह सिद्धांत जतायो॥८२॥

अनाद्यविद्यया बद्धं ब्रह्म तत्किल कारणम्॥
स्वाविद्यया संसरति मुक्तिः कल्पितवाक्यतः॥८३॥

तत्वदीपप्रकाशः

तर्हि किं कारणमित्याकांक्षायामाह॥ अनाद्यविद्येयेति।

अनादिरविद्या अहमज्ञ इत्यनुभवसिद्धाभावरूपा। तेन बद्धं चैतन्यं तदध्यासात्तदेतादृशं जगत्कारणं कार्यानुरूपस्यैव कारणस्य युक्तत्वात्॥ कार्यं तु जगज्जडात्मकं हेयं तुच्छनिष्ठम्॥ अतः कारणेनापि तथा युक्तेन भाव्यमिति युक्तयाभासः॥ वस्तुतस्तु "सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्" इति "स आत्मानं स्वयमकुरुत" इति "प्रजायेय" इत्यादिवाक्यैः स्वतःप्रमाणभूतैर्निःसंदिग्धं प्रतिपाद्यते कार्यरूपस्य जगतोऽब्रह्मत्वम्॥

कुत्सितत्वं न क्वचिदपि ब्रह्मविदां हृदये भासते॥ यथा स्वांगेषु पुरुषस्य पृथग्भान एव तथा प्रतीतेः॥ अन्यथा बीजादीनां ब्रह्मत्वकथनं मलदृष्टांतेन बाधितं स्यात्। तथा सति सर्वसन्मार्गनाशः॥

तथा वाक्याभासाः॥ "इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते" "अमृतापिधानाः" "वाचारम्भणं विकारः" "मायां तु प्रकृतिं विद्यात्" इत्यादयः॥

एतेषां पदार्थप्राया माया वाक्यविरोधेन न वाक्यार्थे संगच्छते॥ तथाच यथायथं 'माया'शब्देन क्वचिदिंद्रियवृत्तिः क्वचित्प्रथमं कार्यं सूक्ष्ममनृतशब्देन देहेंद्रियादिकम्॥ "सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्" इति ब्रह्मण एव देहेंद्रियादिरूपत्वमात्मरूपत्वं च नत्वत्र स्वप्नादिदृष्टांतेन मिथ्यात्वं वक्तुं शक्यते॥ बाधश्रवणाच्च "मिथ्यादृष्टिर्नास्तिकता" "मायेत्यसुराः"॥ "असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्" इत्यादिवाक्यैः साधकानि सहस्रशो वाक्यानि संति॥ "स सभूतं स भव्यम्" इति "हरिरेव जगद्" इत्यादीनि॥ अतो

बाधितोप्यविद्यावादः केषाञ्चिद् हृदये शमादिरहितानां चित्तदोषेण "जगद्दुष्टम्" इति पश्यतां प्रतिभातीत्याह ।। किल इति ।।

तन्मते बंधमोक्षौ निरूपयति ।। स्वाविद्ययेति ।।

चैतन्यमात्रनिष्ठया जलावरणमलरूपया ।। आत्मानं बहिर्मुखः संसारिणं मन्यते ।। तस्य च मोक्षस्तेनैव विद्यावत्वेन कल्पितगुरोरुपदेश-वाक्यदिति ।।८३ ।।

ब्रजभाषाटीका

मायावादीलोग श्रुतिसूत्रनूके मुख्य अर्थकों नहिं मानेंहैं याको बाधकरिकें मिथ्यावाक्य मिथ्यायुक्तिनूकरिकें ब्रह्मके जगत्कर्तापणेमें दोष लगावेंहैं, परब्रह्मकु कारण नहिं मानेंहैं तब वे लोग जगत् बनायवेवारो कौनकूं मानेंहैं या आशंकाकूं दूरकरिवेकेंलियें मायावादीमतको वर्णन करेंहैं।

अनादि जो अविद्या अर्थात् जाको आदि नहिं हे ऐसे भावरूप अज्ञानकरिकें बंध्यो भयो जो साकार चैतन्य वो या जगत्को कारण है, क्योंकि जैसो कार्य होवेहै कारणभी वाहीके अनुकूल वैसोही होवेंहै ।। कार्य जो जगत् है सो जड़रूप है और हेय है, कदर्य उत्पत्ति अन्तवालो है, तासों कारणभी वैसोही जड़- हेय तुच्छनिष्ठ होनों चाहिये, यह उनकी मिथ्यायुक्ति है ।।

सिद्धांततो यह है वेदव्यासजी महाराजनें ब्रह्मसूत्रनूमें श्रुतिनकूं ही प्रमाण मानीहै । लौकिकयुक्तिनूकूं प्रमाण नहि मानीहै ।। श्रुतिनूमें ब्रह्मकूं कारण बतायोहै "सत्यञ्चानृतञ्च

सत्यमभवत्'' या श्रुतिमें कार्यकूंभी ब्रह्मत्व कह्यो है ''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' या श्रुतिमें भगवान्नें अपने आत्माकूंही जगत्रूप कियो ये बात लिखी है ''बहुस्यां प्रजायेय'' या श्रुतिमें भगवान्ही बहुतरूपवारे होयवेकी इच्छाकरते भये यह बात लिखी है॥ उच्चनीचादिभाव जगत्में दीखें हैं तथापि ब्रह्ममें कोई प्रकारको दोष नहिंहै यह बात जताई॥ स्वयं प्रमाण वेदवाक्यन्सों कार्यरूप जगत्कूं ब्रह्मपनो सिद्धकियो याहीकारण ब्रह्म ज्ञानीन्कूं जगत्को तुच्छपणो अथवा कुत्सितपणो नहिंदीखेहै, निर्दोषब्रह्मरूपही दीखेहै और जिनकी अविद्या दूर नहिंभई है उन मनुष्यन्कूंही जगत्में कुत्सितपणो आदि अनेक दोष दीखेंहैं॥ जैसें सफेद शंख पीलीयावारेमनुष्यकूं पीलो दीखेहै परंतु संख तो सफेदही है याहीप्रकार जगत्तो ब्रह्मरूपही है, अज्ञानीलोगनकूं अविद्याकरिकें अनेकदोषवारो दीखेहै॥ जैसें पुरुषकूं अपने अंगनमें कुत्सितपणो नहिंमालुम पडेंहै ऐसेंही ब्रह्मके साथ जगत्को अभेद मानवेवारे ज्ञानीन्कूं जगत् कुत्सित नहिं प्रतीतहोवेहै॥ जहां भेद है तहांही कुत्सित्वादिदोष प्रतीत होवेंहैं॥ जो जगतकूं कुत्सित मानोगे तो छांदोग्यमें तथा गीतामें (बीजं मां सर्वभूतानाम्) याश्लोकमें बीजन्कूं ब्रह्मरूपता लिखी है सो नहिं बन सकेगी, क्योंकि जो जगत्रूपी वृक्षकूं यदि कुत्सित तुच्छ मानोगे तो जीवज अंडज अन्नमय बीजकी मलतुल्यताभी

कहसकेंगे तो ब्रह्मपणो नहिंहोयगो, अर्थात् जगत्रूप वृक्षकुं तुच्छ मानोगे तो जगत्को बीज ब्रह्मभी तुच्छ भयो ॥ तबतो ब्रह्मज्ञान होयवेके लियें पंचाग्निविद्याके साधक जो श्रौतयज्ञादिकर्म तथा स्मृतिके बनाये ज्ञान होयवेके उपाय वृथाही होंयगे, तो सब सन्मार्गको नाश होयगो इति ॥

आगे ईश्वरकों मायाकृत बंध होयवेमें मायावादीके मतानुसार प्रमाण दिखावेंहैं ॥ ''इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते'' मायाकरके बहुतरूप जाके होरहेंहैं ऐसो परमेश्वर दृष्टिगोचर होवेंहै, या रीतिको या वाक्यको अर्थ मायावादी करेहैं परन्तु याको ऐसो अर्थ नहिंहै, बोहोत रूपवारो परमेश्वर मायाकरिकें अर्थात् नेत्रादि इंद्रियजन्यबुद्धिकी वृत्तिन् करिकें दर्शनमें आवें है या रीतको अर्थ है, क्योंकि या श्रुतिमें पहिलीके दोयपदमें विनाही माया बहुत रूप धारणकरनो लिख्योहै तासों बहुतरूप धारणकरिवेमें माया कारण नहिंहै, बहुतरूपवारे परमेश्वरके देखिवेमें माया सहायकमात्र है ॥

ऐसेंही ''मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्'' अर्थ-माया प्रकृतिसों कहेंहैं, प्रकृति-सहित परमेश्वरकूं मायी जाननो। या वाक्यमें सत्यप्रकृतिको ग्रहण करनो मिथ्यामायाको ग्रहण नहिंकरनो, क्योंकि एकादशस्कंधमें ''प्रकृतिर्ह्यस्योपादानम्'' याश्लोकमें प्रकृतिपुरुषकालकूं भगवद्रूपता लिखीहै।''अनृतापिधानाः'' यह श्रुतिभी जगत्कूं मिथ्यात्व नहिंकहेहै किन्तु दहरज्ञानीके (काम)

मनोरथ अनृतकरके अर्थात् देहेंद्रियादिकन्करिकें ढकेभये इत्यादि अर्थकों कहेंहै।

ऐसेंही 'वाचारम्भण' श्रुतिकोभी कार्यकूं कारणात्मा मानकें वाकूं सत्यकहवेमेंही तात्पर्य है॥ 'माया'शब्दके क्रिया, दम्भ, बुद्धि आदि अनेक अर्थ अनेकार्थकोशमें लिखेहैं॥ वेदनिघण्टुमें माया अभिख्या, वयुन इनकूं बुद्धिके नाम कहेंहैं, बुद्धि है सो न्यारी- न्यारी इंद्रियन्करिकें नानाप्रकारकी होवेंहै तासों "मायाभिः" यह बहुवचनहै॥ "मायांतु प्रकृतिम्" या वाक्यमें 'माया'नाम सृष्टिके आरंभमें जो सूक्ष्म कार्य हे वाको नाम है॥ अनृतनाम देहेंद्रियादिकको है॥ जो यहां 'अनृत' नाम यदि मिथ्याको होय तो मिथ्या होयसो सत्य नहिंहोयसके है॥ यहां तो आगेकी श्रुतिमें "सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्" या वाक्यमें अनृत और सत्यरूप दोनों सत्यरूप होतेभये यह बात लिखीहै। तासों या वाक्यको ऐसो अर्थ करनो "अनृत जो देहेंद्रियादिक, सत्य जो जीवात्मा दोनोंरूप सत्य जो ब्रह्म है सोही होतोभयो"॥ याकि आदिमें भगवान् बहुरूप होयवेकी इच्छाकरतेभये ऐसें लिखीहै ॥ अन्त्यमें "सत्यमभवत्" अर्थात् सत्यही होतो भयो यह लिखी है॥ जो 'अनृत'शब्दकों मिथ्यावाची मानोंगे तो आद्यन्तसों विरोध आवेगो। तासों स्वप्नके दृष्टांतसों जगत्कूं भ्रमरूप नहिं मानलेनों "असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्" या गीतावाक्यमें जगत्कूं असत्य

मानवेवारेकूं आसुरजीव कह्योहै॥ तथा "यद्भूतं यच्च भाव्यम्" "हरिरेव जगत्सर्वम्" इत्यादि सहस्त्रवाक्यन्में जगत् भगवद्रूप मान्योहै ॥ याप्रकार अनेकप्रमाणसों खंडन कियो भयो भी अविद्यावाद है सो चित्तदोषकरिकें जगत्कूं दोषसहित मानवेवारे शमदमआदिसाधनरहित पुरुषनके हृदयसों दूर नहिं होवेहै उनके हृदयमें वैसोही भासमान होतो रहतहै॥

मायावादीके अनुसार बंधमोक्ष दिखावेंहैं॥

उनके मतमें प्रदेशविशेषमें जलको जो आवरण मल ताके स्थापनापन्न अविद्याकरिके निष्फल ब्रह्म अपने स्वरूपको ज्ञान भूल जावेहै तब बहिर्मुख होयके आपुनको संसारी मानेहै येही बंध है॥ मूल अज्ञानसों छूटजानोही मोक्ष मानेंहै। कल्पना करिके ज्ञानवान् मानेगये गुरुके उपदेशवाक्यकोही मोक्षको साधन मानेंहैं और जितने लौकिक वैदिक यज्ञ भक्ति आदि साधनकूँ भ्रमात्मक जगत्मध्यपाति मानके मिथ्या बतावेंहैं॥८३॥

एवं प्रतारणाशास्त्रं सर्वमाहात्म्यनाशकम्॥
उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुतिस्मृतिविरोधतः॥
कलौ तदादरो मुख्यः फलं वैमुख्यतस्तमः॥८४॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु एवमेवास्तु शास्त्रार्थः को दोषः ? इति चेत्तत्राह। एवं प्रतारणाशास्त्रमिति॥

यथा प्राणिनो भगवद्विमुखा भवंति तथोपायो रचितः। नत्वत्र किंचित् ज्ञातव्यमस्ति॥ त हेतुमाह॥ सर्वमाहात्म्यनाशकमिति॥ यद्धि सर्वोपास्यं तस्य माहात्म्यं नाशयति सर्वेश्वरः सर्व कर्त्ता सर्वकारणरूपः इत्यादिरूपम् । तर्ह्येतन्मतं सर्वं लिखित्वा दूषणीयमिति चेन्नेत्याह॥ उपेक्ष्यमिति॥ असद्भावनया स्वसयापि बुद्धिनाशःस्यादतस्तत्रोपेक्षैव कर्तव्या सुतरां भगवद्भक्तैर्भक्तिमार्गविरोधात्॥ तद्दूषणमाह॥ श्रुतिस्मृति विरोधतः इति॥ स्वप्रकरणपठितैः "आनंदाद्ध्येवखल्विमानि भूतानि जायंते" इति "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" इति वाक्यसहस्रैः-र्मायावादो विरुद्ध्यते॥

सर्वेषामादरान्यथानुपपत्तिं परिहरति॥

कलौ तदादरो मुख्यः इति॥

तत्रापि हेतुः फलं वैमुख्यतः इति॥ भगवद्वैमुख्यात्तमो भावि॥८४॥

व्रजभाषाटीका

या रीतिको मोह करायवेवारो शास्त्र प्राणिनूँ भगवान्सों विमुखकरिवेकेलिये बनायो है, या रीतिके शास्त्रमें कोईभी बात जानवेयोग्य नहिं है॥ भगवान् सबके ईश्वर हैं, सबके कर्ता हैं, कारणकेभी कारण हैं, या रीतके सर्वोपास्य पुरुषोत्तमके माहात्म्यकूँ नाश करिवेवारो यह मायावादशास्त्र है, भक्तिमार्गको विरोधि है, तासों भगवद्भक्तनकूंभी या मतकी उपेक्षा करदेंनी चाहिये॥ या मायावादमें "आनन्दाद्ध्येवखल्वि-मानि भूतानि जायन्ते" "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" इत्यादि हजारन् वाक्यको विरोध है॥ कलियुगमें या मतको बहुत आदर है,

या करिकें आसुरजीव भगवान्सों विमुख होयकें तम के भागी होंयगे॥८४॥

ज्ञाननाश्यत्वसिद्ध्यर्थं यदेतद्विनिरूपितम्॥
तदन्यथैव संसिद्धिं विद्याविद्यानिरूपणैः॥८५॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु स्वात्मज्ञानान्मोक्षः सिद्ध्यत्विति प्रपंचनिवृत्त्यर्थं प्रपंचस्याज्ञानकार्यत्वमुच्यते॥

यतो ज्ञानमज्ञानस्यैव नाशकमिति॥ सकार्यामविद्यां विद्या नाशयत्विति जगतो मायिकत्वं प्रतिपाद्यते इति चेत्तत्राह॥ तदन्यथैव संसिद्धमिति॥ नहि ब्रह्मविद्यायां प्रपंचविलयोपेक्ष्यते तथासति प्रलयवत्सर्वेषां अनादरणीयता स्यात्॥ अतो विद्याविद्यानिरूपणैः साधनशास्त्रैरेवान्यथासिद्ध-मिति न तदर्थं प्रपंचविलयो वक्तव्यः॥

"विद्यांचाविद्यां च" इत्यादिश्रुतयोऽत्रा-नुसंधेयाः॥ हृदये स्वयं भासमानो भगवान्मोक्षं दास्यति किं प्रपंचविलयेनेति भावः॥८५॥

व्रजभाषाटीका

शंका - आत्मज्ञानसों मोक्ष होवे है यासों विद्या अर्थात् ज्ञान है सो जगद्रूप कार्यसहित अविद्याको नाश करेहै। यासों जगत्कूँ मायिक अर्थात् अविद्याको कार्य मानेंहैं, क्योंकि जो अविद्याको कार्य न होय तो ज्ञानसों कैसें निवृत्त होय॥

उत्तर- अविद्याको कार्य अहंता-ममतारूप संसारही है, जगत् अविद्याको कार्य नहिं है। और विद्या अर्थात् ज्ञानकरकेभी अहंता-ममतारूप संसारकोही नाशहोवे है॥

जगत्को ज्ञानसों नाश नहिंहोयहै, ब्रह्मज्ञानमें जगत्के लय होयवेकी अपेक्षा नहिंहै, ऐसेंही होयतो जैसें प्रलयकों कोई पुरुषार्थ नहिं समुझेहैं ऐसेही ब्रह्मविद्याभी अनादर करिवेयोग्य होजायगी! तासों विद्यासों अविद्याकी निवृत्ति करिवेवारे शास्त्रन्सों ज्ञान है सो अज्ञानात्मक अहंताममता-रूप संसारकी निवृत्ति करेहै यहही बात सिद्ध होयहै, अतः मोक्षकेलिये जगत्को लय होनो नहिं कहनो चाहिये।। "विद्याञ्चाविद्याञ्च" याश्रुतिके अन्तमेंभी "विद्यामृतमश्नुते" या वाक्यमें ब्रह्मसाक्षात्कारकरिके अमृत-मोक्षकी प्राप्ति लिखी है। तासों हृदयमें भासमान भये भगवान् स्वयं मोक्ष देंयगे, जगत्के लय होयवेसों कहा प्रयोजन है।।८५।।

यन्मायिकत्वकथनं पुराणेषु प्रदृश्यते।।
तदैंद्रजालपक्षेण मतान्तरमिति ध्रुवम्।।
नास्ति श्रुतिषु तद्वार्ता दृश्यमानासु कुत्रचित्।।८६।।

तत्वदीपप्रकाशः

ननु पुराणेषु मायिकत्वं श्रूयते प्रपंचस्य "विद्धि माया मनोमयम्" "त्वय्युद्धवाश्रयति" इत्यादिषु ततो लाघवात्मायावाद एव बुद्धिसौकर्यादंगीकर्तव्यः इत्याह।। यन्मायिकत्वकथनमिति।।

एव मनूद्य परिहरति ।। तदैंद्रजालपक्षेणेति ।। सृष्टिभेदेषुएन्द्रजालपक्षो निरूपितः।। स एव पुराणेषु वैराग्यार्थं निरूप्यते।। अतो न वस्तुनिरूपकम्।। किंतु तन्मतांतरमसुरव्यामोहजनकम्।। पुराणानि भगवल्लीलाप्रतिपादकानि भगवच्चरित्रवद्दैत्यानां मोहमुत्पादयंति।।

एवमेवेत्यत्रोपपत्तिमाह।। नास्ति श्रुतिष्विति।।

यदि जगतो मायिकत्वं ज्ञानार्थं कमार्थं वाभिमतं स्यात्तदा काण्डद्वयमध्ये क्वचिदुक्तं स्यात्।। ननु सर्वे वेदास्त्वया न ज्ञायंत इति कथं ज्ञायते नोक्तेति तत्राह।। दृश्यमानास्विति।। एकादश शाखाः सांप्रतं प्रचरंति तासु न दृश्यते इति अर्थः ।।८६।।

व्रजभाषाटीका

पुराणनूमें जो कहाँ-कहाँ "विद्धि मायामनो-मयम्" "त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारः" इत्यादि स्थलनमें जगत्कूं मायिक बतायोहै सो या ग्रन्थमें पहिले कहेभये वैदिकसृष्टिके प्रकारनूमें इन्द्रजालके समान जो सृष्टिको प्रकार लिख्यो है- जा सृष्टिके भगवान् उपादान कारण नहिं हैं केवल मायाद्वाराही होय हैं - वाको निरूपण भगवान्‌को वैराग्यगुण दिखायवेके लिये कियो है।। वाही मिथ्यासृष्टिको निरूपण पुराणनूमें कहीं है सो जगत्कूं मिथ्या समुझिके अहंता ममता छोडदेंगे तो मनुष्यनकूं वैराग्य सिद्ध हो जायगो याकेलिये कियोहै।।

यापक्षसों पदार्थको ज्ञान नहिं होयहै किन्तु यह मतांतर है, आसुर जीवनूकूं मोहजनक है।। भगवल्लीलाके कहिवेवारे पुराण जैसे अवतारनूमें आसुरजीवनूकी भक्ति जा तरेहसुं नहिं होय वा तरेहसुं मोहकचरित्रको वर्णनकरेंहैं, जैसे शाल्व दैत्यके लायेभये मिथ्या वसुदेवके मस्तक को खंडन देखिके श्रीकृष्णको शोच करनो भागवतमें शुकदेवजीनें मतान्तरके

अभिप्रायसों लिखिकें वाको खंडन करदीनो है, ऐसेही जगन्मिथ्यापक्ष लिखिके दैत्यनकूं मोह करावें हैं ॥ जगत्के मिथ्यापणेंको ज्ञानमें अथवा कर्ममें उपयोग होय तो वेदके दोनों काण्डमें लिख्यो दीखवेमें आनों चाहिये ॥ कदाचित् कहोगे सब वेदकों आप जानों नहिंहो तब कैसें मालुम पडी वेदमें नहिंलिख्यो है ?

तहाँ आप आज्ञाकरें हैं यासमयमें ग्यारह शाखा को प्रचार है उनमें नहिं लिख्योहै ॥ उन शाखान्के नाम या प्रकार हे :?

१तैत्तिरी २काण्वी ३माध्यन्दिनी ४मैत्रायणी ५मानवी यह पांच यजुर्वेदकी शाखा हें । हिरण्य-केशी तैत्तिरीकोही नाम है ॥

६ शांखायनी ७ आश्वलायनी ऋग्वेदकी दो शाखा हैं ॥

८ कौथुमी ९ राणायनी यह दो सामवेदकी शाखा हैं ।

१० शौनकी ११ पैप्पलादी यह दो शाखा अथर्ववेदकी हैं ॥८६ ॥

वाचरंभणवाक्यानि तदनन्यत्वबोधनात् ॥
न मिथ्यात्वाय कल्प्यंते जगतो व्यासगौरवात् ॥८७ ॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु अस्ति सामशाखायामुत्तरकांडे वाचारंभणवाक्यमिति चेत्तत्राह ॥ वाचारंभणवाक्यानीति ॥

अत्रोपक्रमे ''कतमः स आदेशः'' इति प्रश्ने ''यथैकेन मृत्पिण्डेन''

इत्यादिदृष्टांतैः सामान्यलक्षणप्रत्यासत्तिरिव निरूपिता।। दृष्टांते कार्यकारणयोरुभयोरपि प्रत्यक्षत्वम्।। दार्ष्टांतिकेषु कार्यं प्रत्यक्षसिद्धं कारणं श्रुतिसिद्धम्।। कारणताप्रकारश्च तत्र कार्यकारणयोरभेदो बोधनीयः।। अन्यथैकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं न स्यात्।। प्रकारभेदानामज्ञानात्।। अतः कार्यप्रकाराःव्यवहारार्थं वाचा संकेतिता घटः, पटः इत्यादयो नतु तेन रूपेण तेषां वस्तुत्वम्।। तथा सत्येकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं न भवेत्।। सत्यता तु "मृत्तिकेत्येव" कारणत्वेनैव।। अतः कार्याणां तदनन्यत्वमेव श्रुत्या बोध्यते नतु मिथ्यात्वं शुक्तिरजतवत्।। अन्यथा शुक्तिरजतादिकमेव दृष्टांती-क्रियते।। नापि तत्र सामान्यलक्षणा संभवति भ्रमाणामनंतरूपत्वात्।। तस्माद्वाचारंभणवाक्यानि जगतो मिथ्यात्वाय न कल्प्यंते।। तथैवाह सूत्रकारः।। "तदनन्यत्वमारंभणशब्दादिभ्यः" इति।। ननु यथा व्यासो महांस्तथा शंकरादिरपि ततस्तद्विरोधात्कथमेवं निर्णयस्तत्राह।। व्यासगौरवादिति।। व्यासोऽस्माकं गुरुरतो व्यासाभिप्रेतविरुद्धं नांगीक्रियते इत्यर्थः ।।८७।।

व्रजभाषाटीका

सामवेदकी शाखामें "वाचरंभण"श्रुतिसों जगत्को मिथ्यात्व सिद्ध होयहै एसे कहिवेवारे मायावादीके प्रति वाचारंभणश्रुतिको ठीक- ठीक अर्थ दिखावेंहैं।।

या "वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्" श्रुतिके उपक्रममें अर्थात् आरंभके पूर्व मृत्तिकापिंडको दृष्टांत दियो है, जैसें एक मृत्तिकापिण्डके जानिवेसों जितने माटीके बने पदार्थ हैं उनको ज्ञान होवेहै, या प्रकार सामान्यरीतिसों ब्रह्मको लक्षण दिखायो।। दृष्टांतमें कारण मृत्तिका तथा कार्य

घडा-चप्पन आदि प्रत्यक्ष दीखवेमें आवें हैं ॥ जाकेलिये दृष्टांत दियो वा दार्ष्टांतिकमें कार्य- जगत्के पदार्थ तो दीखवेमें आवेंहैं ॥ कारण जो ब्रह्म है सो केवल शास्त्रमात्रसों जान्यो जायहै और जैसें मृत्तिकासों घटको भेद नहिंहै या प्रकार ब्रह्मसोंभी जगत् अलग नहिं हे, जो अलग होय तो ब्रह्मज्ञानसों जगत्को ज्ञान नहिं होयसके ॥ अनेक घट-पट आदि पदार्थनकूं व्यवहारमें लायवेके लियें ''ऐसो होय तासों घडा कहनो'' ''ऐसो होय तासों कूँडा कहनो'' या रीतिसों नाम धरि दीनें हैं ॥ विचार पूर्वक देख्यो जाय तो ये सब मृत्तिकाही है, तासों ''मृत्तिका सत्य है'' या श्रुतिकरके कार्य कारणसों अलग नहिं है यह बात जताई है ॥

जगत् मिथ्या है यह बात श्रुतिनसों नहिं सिद्ध होय सकेहै, जो ऐसो श्रुतिको अभिप्राय होय तो ''छीपमें जो चांदीको धोका होवे है यह चांदी मिथ्या है'' वाहीको दृष्टांत देनों योग्यहतो ॥ जो जगत् मिथ्या होय तो सत्य ब्रह्मज्ञानसों मिथ्या जगत्को ज्ञान कैसे संभव होय सकेहै ॥ तथाच एकज्ञानसों सर्वपदार्थको ज्ञान हो जायवेकी जो प्रतिज्ञा है ताकी हानि होय है तासों जगत्कूं मिथ्या बनायवेके लियें यह श्रुति नहिं है ॥ सूत्रकार वेदव्यासजीनेंभी ''तदन्यत्वमारंभण-शब्दादिभ्यः'' या सूत्रमें जगत्को ब्रह्मके साथ अभेदही सिद्धकियो है ॥

शंका - कदाचित् कहोगे जैसें व्यासजी बडे हैं वैसे

शंकराचार्यभी तो बड़े हैं, उनके वाक्यनूंकुंभी प्रमाण माननों चाहिये ! आपके करे निर्णयमें तो शंकराचार्यके वचननूंको विरोध आवे है।

समाधान - तहाँ आज्ञा करें हैं व्यासजी हमारे गुरु हैं अर्थात् वेदांतविचार करिवेवारे हमलोग हैं उन सबनके निर्वाहकरिवेवारे हैं।। तात्पर्य यह है व्यासजी सूत्रनकूं बनायकें श्रुतिके संदेहको नहिं मेटते तो हम वेदान्तविचार कैसे करि सकते तासों व्यासजीके अभिप्रायसों विरुद्ध मतकूँ हम नहिं मानें हैं ॥८७॥

ज्ञानार्थमर्थवादश्चेच्छ्रुतिः सृष्ट्यादिरूपिणी ॥
अनङ्गीकरणाद्युक्तं विधिमाहात्म्ययोर्न तत् ॥८८॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु सर्वेषां विचारो महांस्तत्र सूत्रेषूक्तानुक्तदुरुक्तचिंताया अपि वक्तव्यत्वात्कथमेकांततो निर्णयः ।। सृष्ट्यादिवाक्यान्यर्थवादरूपाण्य-तस्तेषां स्तावकत्वमेव मुख्यमिति ।। सृष्ट्यादौ तात्पर्याभावाज्ज्ञानस्यैव फलसाधकत्वात्क्रियावज्ज्ञानस्यार्थवादवाक्यप्रयोजनाभावाद्वस्तुस्वरूपज्ञाने कार्यापेक्षया विवर्तस्य प्रयोजकत्वान्मिथ्यात्वमेव स्वीक्रियतामित्याह ।। ज्ञानार्थमिति ।।

परिहरति ।। अनंगीकरणादिति ।। भवेदेतदेवं यदि मिथ्यावादिमते सृष्ट्यादिवाक्यैः सह महावाक्य-स्यैकार्थता संभवति ।। पूर्वकांडे विद्ध्येकवाक्यतार्थवादानां "स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः" इत्युत्तरकांडे ब्रह्मवादिनां माहात्म्यज्ञानेनैकवाक्यता ।। अन्येषां मतेतु न वेदांतेषु

माहात्म्यज्ञानमुपयुज्यते नापि विधिः ।। अतएव एक वाक्यताभावान्नैवमर्थः स्वीकर्तव्यः ।।८८।।

ब्रजभाषाटीका

शंका - वेदके अर्थ जानिवेकेलिये विचारही बड़ो साधन है, विचारके द्वारा व्याससूत्रको अर्थ और आचार्यनूनें भी कह्यो है तहाँ आपकोही कियो अर्थ व्यासजीके संमत है औरको कियो अर्थ व्यासजीके अभिप्रायके विरुद्ध है या बात को कैसें निर्णय होय? तासों विचार करनोंही योग्य है। तहाँ मोक्षको देवेवारो ज्ञान है, सृष्टिके कहिवेवारे वेदके जितने वाक्य हैं वे सब अर्थवादरूप हैं अर्थात् स्तुति करिवेवारे हैं और जगत्कों जो ब्रह्मको कार्य मानोंगे तो ब्रह्म विकारवारो माननों पडेगो, क्योंकि कारणमें कछू विकार भये विना वो कार्यरूप नहिं बन सकेहै । और कार्यके द्वारा कारणको विलंबसों ज्ञान होयहै।। पिवर्त (भ्रम) के द्वारा भ्रमके आधारको शीघ्र ज्ञानहोवेहै तासों जगत्को मिथ्या भ्रमरूपही माननों उचित है।।

उत्तर-तुमारे मतमें सृष्टिवर्णन करिवेवारे वाक्यन्की तत्वमस्यादिमहावाक्यन्के साथ एकवाक्यता नहिं संभवहोयसकेहै, क्योंकि तुमारे मतमें तो ज्ञानही मोक्षको साधन है अर्थात् मोक्षके देवेमें असहायशूर है तासों सृष्ट्यादिवाक्य व्यर्थही होंयगे, क्योंकि ''तत्वमसि'' ये वाक्य विधिरूप नहिंहै तासों सृष्ट्यादिवाक्य कोनकी स्तुति

करिवेवारे होंयगे ? स्तुति करिवेवारे भयेविना एकवाक्यता होनी दुर्घट है । अतएव जगन्मिथ्यात्व-रूप अर्थभी नहिं मानवे योग्य है ॥

हमारे ब्रह्मवादीनूके मतमें तो पूर्वकांडमें यज्ञादिकनूमें प्रवृत्ति करिवेकेलियें विधिकों जैसें अर्थवादकी अपेक्षा रहेहै तैसें उत्तरकांडके ज्ञानवाक्य भी जननादिमाहात्म्य-ज्ञानके द्वारा ब्रह्मज्ञान सिद्ध होयवेकेलियें सृष्टि वाक्यनूकी अपेक्षा राखेंहैं तासों एकवाक्यता बनसकेहै, क्योंकि जिन वाक्यनूको प्रयोजन एक होय और परस्पर आकांक्षावाले होंय उनवाक्यनूकी एकवाक्यता होवेहै यह एकवाक्यताको लक्षण है ॥८८॥

अपवादार्थमेवैतदारोपो वस्तुतो न हि ॥
दृढप्रतीतिसिद्ध्यर्थमिति चेत्तन्न युज्यते ॥८९॥

तत्वदीपप्रकाशः

नन्वस्त्वेकवाक्यतायां प्रकारोऽध्यारोपापवादः ॥ पूर्व श्रुत्या प्रथमं जगज्जननमुक्त्वा कर्तृत्वभोक्तृत्वे ब्रह्मणि प्रतिपाद्य तद्द्वारा सोपाधिके ब्रह्मणि बुद्धौ सिद्धायां शाखारुंधतीन्यायेन पूर्वोक्तमपोह्य कतृत्वाद्यपेतं पश्चाद्ब्रह्म बोध्यते इत्याह। अपवादार्थमिति ॥

एतस्य कर्तृत्वादेः आरोपः तस्य प्रयोजनम् ॥ दृढप्रतीतिसिद्ध्यर्थम् इति ॥ अतो न ब्रह्मणि वस्तुतः कर्तृत्वमिति चेन्नैवं वक्तुं युक्तम् ॥८९॥

व्रजभाषाटीका

शंका - जैसें कोई पुरुष अरुंधतीके ताराकों नहिं जानतो होय वा पुरुषकूं अरुंधतीको ज्ञान करायवेके लियें जा

वृक्षकी शाखाके ऊपर अरुंधतीको तारा होय वा शाखाकूं अरुंधतीके नामसों बतावेंहैं, तापीछे मुख्य अरुंधतीको ज्ञान करवायकें शाखामें अरुंधतीके ज्ञानकूं दूरकरदेंहैं, ऐसेंही निराकार ब्रह्मज्ञान करायवेकेलियें सृष्टिवाक्यन्करिके ब्रह्मकूं कर्ता- भोक्ता बतायकें मायिक सगुण ब्रह्मको ज्ञान करावेहैं, ता पीछे वाक्यन्करके कहेभये कर्ता भोक्तापणेको निषेध करकें शुद्ध ब्रह्मको ज्ञान वेद करावें हैं, तासों ज्ञानवाक्यन्कुं कर्ता भोक्तापणेकी नांई करवेकेलियें पहिले झूँठो कर्ताभोक्तापणों ब्रह्ममें माननों पडेहै, क्योंकि कर्ताभोक्तापणो नहिं भयेविना नांई कायकी करीजाय तासों वाक्यन्सों कर्ताभोक्तापणेके निषेध करवेकेलिये झूँठे कर्ताभोक्तापणेको प्रतिपादन-करिवेवारे सृष्टि वाक्यन्की अपेक्षा है यासों एकवाक्यता बनसकेहै ॥

उत्तर- जैसें वन्ध्याके पुत्रको निषेध करिवेकेलिये कोई झूँठों वंध्याको पुत्र बनावे तो वह पुत्र वाणीमात्रमेंही आसके है और इंद्रियन्सों वाकी प्रतीति नहिंहोवेहै ऐसेंही ईश्वरमें कर्ता-भोक्तापणेंको निषेध करिवेकेलियेंही वेदमें सृष्ट्यादिकवाक्यनकरके मिथ्यासृष्टिकी कल्पना करी होयतो यह जगत् वाणीमात्रमें आनो चाहिये, प्रत्यक्ष प्रतीत नहिं होनों चाहिये ॥८९॥

मुख्यार्थबाधनं नास्ति कार्यदर्शनतःश्रुतेः ॥
ऐंद्रजालिकपक्षेऽपि तत्कर्तृत्वं नटे यथा ॥९०॥

तत्वदीपप्रकाशः

तत्र हेतुः ।। मुख्यार्थबाधनम् इति ।।

अपवादार्थं जगत्कथने तस्य प्रतीतिर्नस्यात् ।। नहि जगत्प्रतीतिर्वेदसिद्धा येन प्रथमं बोधयति पश्चान्निषेधति ।। लोकसिद्धा ह्येषा ।। तथाच तत्कर्तारमेवाह ।। जगदनूद्य तत्कर्तृत्वं बोधयित्वा यदिहि निषेधं कुर्यात्तदा कार्यस्य विद्यमानत्वात्कर्त्रंतराभावाच्च बाधितविषया स्यात् ।। सर्वतो बलवती ह्यन्यथानुपपत्तिः ।।

वेदोऽपि स्वभ्रांतिकल्पितः इति महत्साहसम् ।। किंच स कल्पको नास्मदादिः ।। तथा सति पारंपर्यं नोपपद्येत ।। ''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' इति न्यायविरोधश्च ।। अतः प्रपंचप्रतीते-र्विद्यमानत्वान्मुखार्थबाधनं नास्ति ।।

अथ-ग्रहिलतया मायासहितस्यैव कर्तृत्वमंगीक्रियेत प्रपंचस्य च मायिकत्वं तदा लौकिकमायिनो दृष्टांतीकर्तव्यः ।। तत्र च तादृशं प्रदर्शनसामर्थ्यरूपं मंत्रादिना कर्तृत्वं नटे वर्तत एवेत्याह ।। ऐंद्रजालिकपक्षेऽपीति ।। दर्शनन्यायश्रुतिभिर्न जगतो मिथ्यात्वमिति भावः ।।९० ।।

व्रजभाषाटीका

शंका - जगत्की प्रतीति वेदसिद्ध नहिंहै तासों वेद पहिली कहिके फिर निषेध कर सके हे ।।

समाधान - जगत् तो प्रत्यक्ष दीखही रह्योहै, वेदतो या जगत्के करिवेवारेकूं बतावेहै ।। कहोगे के वेद हैं सो जगत्को करिवेवारो ईश्वर है यह पहिली कहके पीछें कहेहै जगत्के करिवेवारो ईश्वर नहिंहै, ईश्वर तो अकर्ता है, तब

तो कार्यरूप जगत् तो विद्यमानही है।। ईश्वर विना और कोई कर्ता होय नहिं सकेहै, फिर वेदको अकर्तापणेंको कथन असंभव होयवेसों धोका देवे वारे मनुष्यन्के वचनके समान भयो ।

और वेदभी भ्रमकरकें कल्पित हैं ऐसें कहोगे तो नास्तिकके समानता तथा दुराग्रहीपनो प्राप्त होयगो।। जो वेद अस्मदादिकनकी कल्पनासों बन्यो होय तो वेदके पढवेपढायवेकी परम्परा अनादिसूं चली आवेहै वह नहिं बनसकेगी।। यदि और भी जगतकूं मिथ्या मानोगे तो "वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्" या व्याससूत्रसों विरोध आवेगो, क्योंकि या सूत्रमें स्वप्नादिकन्के तुल्य जगत् नहिं है यह बात स्पष्ट लिखी है ।तासों प्रत्यक्ष विद्यमान् जगत्रूप कार्यको कर्तापणों जो वेदनेंमें ब्रह्ममें बतायोहै ताको नेषध नहिं करनों।।

जो मायावादी हठकरिके मायासहित ब्रह्मकूं जगत्को कर्ता मानेंगे और जगत् मायाकरिकें बन्योभयो मानेंगे तब तो जैसें नट मंत्रतन्त्रादिकन्-करिके मिथ्यावृक्षादिन्कुं दिखावेंहैं और उनको कर्ता नटही कहावेहै ऐसेंही मायिक जगत्को कर्ता ईश्वरही भयो।।९०।।

मुक्तिस्तदातिनष्टा स्यात्स्वप्नदृष्टगजेष्विव।।
मायादीनां च कर्तृत्वं श्रुतिसूत्रैर्विबाध्यते।।९१।।

तत्वदीपप्रकाशः

मिथ्यात्वांगीकारे बाधकमाह॥ मुक्तिस्तदेति॥

कृत्स्नस्य प्रपंचस्य कल्पितत्वे तन्मध्यपातान्मनुष्यादीनां मुक्त्यर्थं प्रयत्नो व्यर्थः स्यात्॥ न हि मायायां प्रतीताः पारावताः कदाचिदपि मुच्यंते॥ नापि स्वप्नदृष्टाः गजाः॥ अतोऽखिलजगत्साक्षी भगवानेव मुच्येत न त्वस्मदादयस्तन्माया-परिकल्पितत्वात्॥ तथा सति व्यर्थः पारलौकिकप्रयासः॥ अस्मदज्ञान-परिकल्पितत्वं तु मोहार्थमिति पक्षद्वयेऽपि मायावादो बाधितः॥ उपहितचैतन्यरूप-भगवन्मायापक्षेऽस्मदज्ञानपरिकल्पनापक्षे च ।

"स्वप्रवृत्तिविघातेन गुर्वादीनां च दूषणात्॥
मायावादो न मंतव्यः सर्वव्यामोहकारकः"॥

नन्वस्तु मायैव कर्त्री तदुपहितो जीवो वा "ब्रह्म तूभयबिम्बरूपम्" इति श्रुतौ तत्कर्तृत्वं बोध्यते इत्याशंक्याह॥ मायादीनां च कर्तृत्वमिति॥

"कथमसतः सज्जायेत" "स ईक्षां चक्रे" "ईक्षतेर्नाशब्दम्" "कामाच्च नानुमानापेक्षा" "नेतरोऽनुपपत्तेः" इत्यादिश्रुतिसूत्रै-र्मायायाः प्रकृतेर्जीवस्य च कर्तृत्वं निषिध्यते॥९१॥

व्रजभाषाटीका

या पक्षमें मुक्तिको अत्यंत नाश प्राप्त होवेहै, क्योंकि सब जगत् जब इन्द्रजालके समान कल्पित है, मनुष्यभी जगत्में आयगये इतनें मिथ्या कल्पितही भये, इनको मुक्तिकेलिये प्रयत्न करनों वृथाही होयगो॥ जैसे इंद्रजालके बनेभये कबूतर आदि पदार्थन्के कभी मोक्ष नहिं होवे है।

जैसें स्वप्नके हाथीकी मुक्तिके लिये कोईभी पुरुष प्रयत्न नहिंकरेहै ॥ या पक्षमें जगत् के साक्षी भगवानूही मुक्त माने जायेंगे ॥ उनकी मायाके बनेभये अस्मदादिक जीव सब बद्धही रहेंगे । तबतो परलोककी प्राप्ति होयवे के लिये जो शास्त्रमें साधन लिखेहैं उनको परिश्रम व्यर्थही होयगो ॥

वाचस्पति मिश्र कहेंहैं "जगत् जीवके अज्ञानकों बनो भयोहै "यह उनको कहनो धोका देवे केलिये है॥

"सूर्याचन्द्रमसौ" या श्रुतिमें सूर्यादि सबपदार्थकों ब्रह्मके बनाये भये कहेहैं यासोंभी विरोध आवेहै ॥

किञ्च इन दोनों पक्षनूमें जीवकी मुक्तिमें प्रवृत्तिको विघात होवेगो तथा शिष्य- शास्त्र गुरु ये सब मिथ्याही होवेंगे । तासों सबकूं मोह करावेवारो मायावाद नहिं माननों चाहिये

शंका- सांख्यकी रीतिसों माया जगत्की करिवेवारी है ऐसो माननो अथवा मायाकरके (उपहित) चारों ओरसों ढक्यो भयो जीवही जगत्को करिवेवारो है ऐसों माननो, ईश्वर तो मायाको अथवा जीवको बिंबरूप है॥ जैसें मेघनके चलवेमें चंद्रमा चलेहै ऐसो प्रतीत होवेहै ऐसेंहीं मायादिकनूके जगत् बनायवेमें ब्रह्म जगत् बनावेहै ऐसी प्रतीति होवेंहै । तासों वेदमें ब्रह्मकूं जगत्को कर्ता कह्योहै॥

उत्तर - "कथमसतः सज्जायेत" इत्यादि अर्थ: असत् अर्थात् झूठे पदार्थसूं सत्य पदार्थ कैसें बनसकेहैं ? "यदिदं

किञ्चन तत्सत्यम्" तासों ब्रह्मभी सत्य है और जो कछु पदार्थ प्रत्यक्ष दीखेहैं ये सब सत्य हैं॥ या श्रुतिकरिके मायाके कर्तापणेको निषेध सिद्ध होवेहै "नेतरोनुपपत्तेः"। या सूत्रसोंभी जीवके कर्तापणेको निषेध व्यासजीने कियोहै, क्योंकि जा समय सृष्टिकी आदिमें जीवन्के शरीरही पैदा नहिं भये वा समयमें शरीर विना जीव कैसे जगत्कूं बनाय सकें हैं ? ऐसें अनेक श्रुति- सूत्रन्करके जीव तथा माया कर्ता नहिं बन सकेंहैं ये सिद्ध होवे है ॥९१॥

अकर्तृत्वञ्च यत्तस्य माहात्म्यज्ञापनाय हि॥
विरुद्धधर्मबोधाय न युक्त्यैकस्य वारणम्॥९२॥

तत्वदीपप्रकाशः

ननु ब्रह्मणि कर्तृत्वनिषेधः श्रूयते अस्थूलादिवाक्यैः। तथा निरंजनश्रुतिः॥ "अकृर्ता भोक्ता च" इति॥ "अहंकारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते" इति॥ एतदन्यथानुपपत्त्या कर्तृत्वस्य भ्रांतिसमानाधिकरणत्वं लोके दृष्टमिति दूषणभयाद्ब्रह्मणि कर्तृत्वं नांगीक्रियते इत्याशंक्याह॥ अकर्तृत्वञ्चइति॥

ब्रह्मणि अलौकिकं कर्तृत्वं वदन्नकर्तृत्वमाह लौकिककर्तृत्वनिषेधार्थम्॥ अन्यथा "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" इति स्वयं पश्चात्कर्तृत्वमुच्यमानं विरुद्ध्येत॥ एतदेवाभिसंधाय केनचिदुक्तं "न प्रमाणमनाप्तोक्तिर्नादृष्टे क्वचिदाप्तता॥ अदृश्यदृष्टौ सर्वज्ञः" इति॥ अतो माहात्म्यज्ञापनार्थमेव अकर्तृत्वकथनम्॥ यथा "पुरुष ऐवदं सर्वम्" "उतामृतत्वस्येशानः" "एतावानस्य महिमा" इति 'हि' शब्दार्थः॥

माहात्म्यबोधनप्रकारम् आह।। विरुद्धधर्मबोधायेति।।

यत्रैवं परस्परविरुद्धाः धर्मा बोध्यन्ते स एव महान्।। ते धर्माः उभये सत्याः।। अन्यथा माहात्म्यं न सिद्ध्येन्नटवत्।। अतो युक्त्यान्यतरस्य न बाधः।।९२।।

व्रजभाषाटीका

शंका - "अस्थूलमनण्वम्" इत्यादि "निरवद्यं निरञ्जनम्" इत्यादिवाक्यन्सों ब्रह्मके कर्तापणेंको भी तो निषेध सिद्ध होवेहै।। गीतामें "अहंकार-विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते" या वाक्यसों भी ये ही निश्चय होयहै।। लोकमें जो कर्ता दीखेहै वह अहंकार मोह- भ्रमवारो दीखेहै।। ब्रह्मकूंभी कर्ता मानोंगे तो ब्रह्ममेंभी यह दोष आवेंगें तासों ब्रह्मकूं कर्ता नहिं माननों चाहिये।।

उत्तर-श्रुति है सो ब्रह्ममें अलौकिककर्तापणेको स्थापन करतीभई अहंकारादिदोष सहित लौकिक कर्तापणेको निषेध करवेके लिये ब्रह्मकूं अकर्ता कहेहैं।। जो सर्वथा कर्तापणेके निषेधमेंही श्रुतिको तात्पर्य होय तो गीतामें "अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा" या श्लोकमें ब्रह्ममें जगत्को कर्तापणो वर्णन कियोहै तासों विरोध आवेगो तासों ब्रह्मकी महिमा जतायवेकेलियें अकर्ता ब्रह्मकूं बतायोहै ।। जैसें पुरुषसूक्तमें "पुरुषएवेद सर्वम्" "उतामृतत्वस्ये-शानः" "एवतावानस्य महिमा" अर्थ-ब्रह्म सर्वरूप है अमृतकोभी ईशान है ।। या मंत्र में ब्रह्मकूं सब जगत्को स्वामी बतायकें

जगत् कूं भी ब्रह्मरूपही बतायोहै ॥ आगे लिख्योहै कि "ब्रह्मकी महिमा है जो अपने स्वरूपकोही आप स्वामी होजावेहै" ॥ यद्यपि लोकमें अपने शरीरको आप मालिक होय वा पुरुषकी महिमा नहिं होयहै औरनको मालिक होय ताहीकी महिमा होवेंहै तथापि ब्रह्ममें लोकविरुद्ध धर्मही महिमा जतायवे वारो है ॥

परस्पर विरुद्धधर्म जा पदार्थमें वेदनें जताये होंय वह पदार्थही बडो समुझनो और दोनोंप्रकारके धर्मनूंकूंही सत्य समुझनो ॥ जैसे "समो मशकेन समो नागेन" या वाक्यमें ब्रह्मकूं हाथीके तथा मच्छरके समान लिख्योहै तहाँ लोकमें मच्छरके समान पदार्थ हाथीके समान नहिं होय सकेंहै ऐसे तर्क करके हाथीके समान ब्रह्मकूं बतायवेवारे वाक्यकूं मिथ्या नहिं माननो, जो एकवाक्यकूँ मिथ्या मानलियो जाय तो ब्रह्मको माहात्म्य नहिं सिद्ध होय ॥ नट जैसे मंत्र औषधादिक करके नाहर तथा हाथी बन जायवे है तैसे ब्रह्म स्वभाव करिकेंही छोटो- बडो (एकजाति) चल (अनेजति) अचल कर्ता- अकर्ता आदिरूप होजायहै ॥९२॥

मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थमुदीर्यते ॥
तस्मादविद्यामात्रत्वकथनं मोहनाय हि ॥९३॥

तत्वदीपप्रकाशः

पुराणंतु मित्रसंमतमिति लोकरीत्या बोधयन्कदाचिन्मायिकत्वं बोधयतीत्याह ॥ मायिकत्वं पुराणेष्विति ॥

आसक्तिनिवृत्त्यर्थं तथा बोध्यते ।। अवांतरप्रकरणानुरोधाच्च तथावसीयते ।। उपसंहरति ।। तस्मादिति ।।९३ ।।

व्रजभाषाटीका

पुराणन्में जो कहाँ-कहाँ जगत्कूँ मिथ्या बतायोहै सो आसक्ति दूरकरिवेके लिये बतायोहै ।। पुराण हैं सो मित्रसंमित उपदेशको करिवेवारो है ।। जैसें कोई पुरुषनें अपने मित्रसें कही "हे मित्र ! विष खानो उचित है परन्तु शत्रुकेघर भोजनकरनों योग्य नहिं", या वाक्य को शत्रुके घर भोजन नहिं करायवेमें तात्पर्य है विष खवायवेमें तात्पर्य नहिंहै ।। एसेंही विषयतारूप आन्तरासृष्टिकुं मिथ्यात्व कहिकें आसक्ति दूर करायकें वैराग्य सिद्ध करिवेमें पुराणन्को तात्पर्य है, सत्यब्रह्मात्मक जगत्कूँ मिथ्या बतायवेमें पुराणन्को तात्पर्य सर्वथा नहिं हैं ।। जो जगत्कूं मिथ्या कहिवेमें ही पुराणनको तात्पर्य होय तो भागवतमें "विश्वं वै ब्रह्म तन्मात्रं" विष्णुपुराणमें "तदेतदक्षयन्नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्" इत्यादि अनेकस्थलन्में जगतकुं सत्यरूपता तथा ब्रह्मात्मकता नहिं लिखते, तासों अवतार प्रकरणके अनुसार वैसे वचनन्कों वैराग्य बोधनार्थ समुझलेनों ।। याको विस्तार 'आवरणभंग'में या श्लोकको व्याख्यामें बहुत कियो है ।।९३ ।।

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहेतुकम् ।।९४ ।।

तत्वदीपप्रकाशः

अस्मिन्नर्थे भगवद्वाक्यं सम्मतिरूपमाह ।। असत्यमप्रतिष्ठं ते इति ।।

अतो यत्र क्वचिज्जगतो मिथ्यात्वमसत्यत्तं मायिकत्वमिति बोध्यते तदासुरमिति निश्चयः ।।९४।।

व्रजभाषाटीका

तासों प्रकरणके अनुसंधान राखवे विना जगत्कूं अविद्यारूप कहेनो प्रतारणा करनो है।। श्रीआचार्यजी आज्ञा करेंहैं केहमारे सिद्धांतमें भगवान्‌के वाक्यकी सम्मति है।। गीतामें "असत्यमप्रतिष्ठम्" या श्लोकमें जगतकूँ- मिथ्या-मायिक- असत्य बतायवे वारेनकूँ आसुर कहेहैं।।९४।।

अखण्डाद्वैतभाने तु सर्वं ब्रह्मैव नान्यथा।।

ज्ञानाद्विकल्पबुद्धिस्तु बाध्यते न स्वरूपतः ।।९५।।

तत्वदीपप्रकाशः

ननु ब्रह्मवादेऽपि 'वाचारंभण'वाक्यानुरोधाद्विकल्पनामसत्त्व-मंगीकर्तव्यमित्याशंक्याह।। अखंडाद्वैतभाने तु इति ।।

द्वेधा हि वेदांतानां बोधन प्रकारः।। प्रजायेयेतिवाक्यानुरो-धादुच्चनीचत्वं भगवानेव प्राप्तः इति विकल्पबुद्धावापि ब्रह्मावगतिर्न विरुद्ध्यते।। क्वचित्पुनर्विकारा वाचैवारब्धा इति कार्यांशमनादृत्य वस्तुस्वरूप विचारेण आविर्भावतिरोभावौ पृथक्कृत्य "सन्मात्रं जगद्" इति बोधयंति।। तत्र प्रथमपक्षे सन्देह एव नास्ति द्वितीयपक्षेऽपि न दूषण मिति 'तु'शद्बः।। यदा अखंडाद्वैतभानं सुवर्णग्राहकवत् सत्वेनैव सर्वं गृह्णाति तदा अवांतरविकल्पविषयिणी बुद्धिः -'घट' 'पट' इति

सा बाध्यते।। सर्वत्र ब्रह्मैवेति बुद्धिर्भवति । नतु स्वरूपतोऽपि घटादिपदार्थोऽपि धर्मी बाध्यते इत्यर्थः ।।९५।।

व्रजभाषाटीका

शंका- 'वाचारम्भण' श्रुतिकरिके जगत्में ब्रह्मबुद्धिकूं सत्यता आवे है तथापि घट-पटादिक विकल्पकूं तो मिथ्यापणो प्राप्तहोवे ही है।।

उत्तर- वेदान्तमें ज्ञान करायवेके दो प्रकार लिखेहैं मुख्याधिकारीन्के लिये तो प्रथम पक्ष है तामें ब्रह्मासों लेकें घास पर्यन्त जितनें हु पदार्थ हैं उनमें उच्च-नीचत्वको भगवान्ही प्राप्त होरहेहैं, अर्थात् भगवान् ही घट-पटादि पदार्थरूप हैं।। या रीतिकी विकल्पबुद्धि भी ब्रह्मज्ञानसों विरुद्ध नहिं है । और अधिकारीन् के लिये दूसरो पक्ष है तामें "यह घट है" "यह पट है "ऐसी विकल्पबुद्धिको अनादर करकें सब ब्रह्म है ऐसी बुद्धि राखनी चाहिये, जैसें सुवर्णको लेवेवारो "यह कुंडल है" "यह कड़ा है" ऐसी बुद्धिको छोडकें सबनकूं सुवर्ण मानकेंही लेजावेहै ऐसेंही अखंडाद्वैत को ज्ञान सुवर्णग्राहकके समान है।। जब सब पदार्थनकूं सद्रूपही मानेहै तब "यह घट है"-"यह पट है" ऐसी बुद्धिको बाध होजावेहै।। सब ठिकाने ब्रह्म है ऐसी बुद्धि होजावेहै।। या पक्षमेंभी सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि होजावेहै तब "यह घट "-"यह पट" ऐसी बुद्धिही मिटजावेहै, तथापि घट-पटादिपदार्थ नहिंमिटे हैं।।९५।।

भिन्नत्वं नैव युज्येत ब्रह्मोपादानतः क्वचित् ।।
वाचारम्भणमात्रत्वाद्भेदः केनोपजायते ।।९६ ।।

तत्वदीपप्रकाशः

ननु घट-पटयोरद्वैतं नोपपद्यत इति प्रत्यक्षानुरोधाद्वैतमंगीकर्तव्य-मित्याशंक्याह ।। भिन्नत्वमिति ।।

कटक-कुंडलयोर्भेदो न सर्वथा भवति ।। उपादानस्यैकत्वात् ।। धर्मरूपत्वे एकस्यैवोभयं धर्मः ।। तयोश्चोपादानाभेदाद्भेदो न युक्तिसहः ।। प्रत्यक्षं तु अभेदेपि भेदं गृह्णाति द्विचन्द्रादिवत् ।। महतांतु प्रत्यक्षं तदपि न गृह्णाति ।। अतः प्रमाणानुरोधाद्वाचारंभणमात्रत्वं पदार्थानामवगत्य सर्वत्र ब्रह्माभावावगतौ केन भेदः उपजायते इत्यर्थः ।। तस्माद्भेदानुरोधेनापि ब्रह्मवादो न निराकर्तव्यः इति भावः ।।९६ ।।

व्रजभाषाटीका

तासों या रीतिसोंभी जगत् मिथ्या नहिं हो सकेंहै ।।

कितनेक मतवारे घडा वस्त्र आदि पदार्थनूकूं न्यारे-न्यारे देखिकें प्रत्यक्षके अनुसार घट-पटादि पदार्थनूको भेद मानें हैं सो भी ठीक नहिं है, जैसे सुवर्णके बनेभये कडा कुंडल आदि पदाथनूमें भेद नहिं होवेंहै, क्योंकि दोनोंको (कारण) अर्थात् बनायवेवारो एकही पदार्थ है ।। ऐसेंही जगत्के पदार्थनमें भेद नहिं है, क्योंकि सब पदार्थनूको बनायवेवारो उपादानकारण ब्रह्म एकहीहै ।।

घट-पटादि पदार्थनूकूं धर्मरूप मानेंजांय तो भी एक ब्रह्म के ही दोनों धर्म भये ।। या पक्ष में भी उपादान ब्रह्मके साथ

अभेद है तासों भेद माननों युक्ति विरुद्ध है॥ प्रत्यक्ष देखिवेसों तो भेद अभेदको निश्चय नहिं होय सके है॥ कभी एक चंद्रमा के भी दो चंद्रमा दीख आवें हैं॥ घटाकाश- महाकाशको भेद नहिं है। लोकमें भेद दीखे है॥ जीवात्मा देहको भेद है।

लोकमें देहसों न्यारो आत्माभी नहिं दीखे है तासों महात्मानकोही प्रत्यक्षज्ञान प्रमाण है। उनकूं तो सर्वत्र अभेदही प्रतीत होवेंहै तासों 'प्रजायेय' तथा 'वाचारंभण' वाक्यके अनुसार सब ठिकानें ब्रह्मबुद्धि भयेपीछें भेद करिवेवारो कोईभी पदार्थ बाकी नहिं रहै जो भेद करि सके॥ तासों भ्रमयुक्त लौकिक भेदप्रतीति केवलसों ब्रह्मवादको खंडन नहिं करनो॥९६॥

साङ्ख्यो बहुविधः प्रोक्तस्तत्रैकः सत्प्रमाणकः॥
अष्टाविंशतितत्वानां स्वरूपं यत्र वै हरिः॥९७॥

तत्वदीपप्रकाशः

एवं मायावादं निराकृत्य साङ्ख्यनिराकारणार्थमाह॥ साङ्ख्यो बहुविधः इति॥

ब्रह्मवाद एव प्रथमसृष्टानां पदार्थानां सांख्यायोगात्सांख्यमिति यन्मतं तद् ब्रह्मवाद एव प्रविशति॥ स्वतंत्रतया यानि मतान्यप्रामाणिकानि तत्रैकं स्थापयति॥ तत्रैकेति॥ संता प्रमाणसिद्धः॥ तस्य स्वरूपमाह॥ अष्टाविंशतीति॥९७॥

ब्रजभाषाटीका

सांख्यशास्त्रके बहुत भेद हैं॥ ब्रह्मवादके क्रमसों प्रथम

उत्पन्नभये जे पदार्थ उनके साथ संख्याको योग कियो अर्थात् उनकी गणना करी तासों उन पदार्थनूके समूहको नाम सांख्यमतको ब्रह्मवाद में ही समावेश है।। स्वतन्त्ररीतिसों बनायेभये जे सांख्यमत है वे प्रमाण नहिंमानें जावेंहैं, इतने सांख्यमतनमें भागवतमें जो द्वितीय-तृतीय स्कंधमें लिख्योहै वो प्रमाण माननो।। वोही मनुआदि-महर्षिगणनें प्रमाण मान्यो है।।९७।।

अन्ये सूत्र निषिध्यंते योगोऽप्येकः सदादृतः।।
यस्मिन्ध्यानं भगवतो निर्बीजोऽप्यात्मबोधकः।।९८।।

तत्वदीपप्रकाशः

अन्येषां दूषणप्रकारमाह।। अन्य इति।।

"अन्येषां चानुपलब्धेः" न हि महत्तत्वं प्रकृतिर्वा जगति प्रतीयते।। नित्या वा प्रकृतिर्निरवयवा च कथं परिणमति।। अतःस्वभाववाद एव प्रकृतिवादोऽपि प्रविशति।। अन्यत्दूषणं भाष्ये विस्तरेणोक्तम्।।

योगं निराकरोति।। योगोऽप्येकःइति।। चित्तवृत्तिनिरोधो योगः स भागवद्ध्यानार्थमंगत्वेनोपयुज्यते स प्रामाणिकः। यस्तु स्वतंत्रतया फलसाधकत्वेन प्रोक्तस्तथा सिद्धि-हेतुर्ज्ञानात्मा च तथान्ये देहेंद्रियादिसाधकास्तेऽप्रामाणिकाः सूत्रे च निषिद्ध्यंते। एतेन योगः प्रत्युक्त इति।। तदाह।। यस्मिन्ध्यानं भगवतः इति।।

"अन्य सूत्रे निषिध्यंते" इत्यनुषंगः।। ध्यानाभावेऽपि-आत्मबोधाङ्गभूतः प्रामाणिक एव।।९८।।

व्रजभाषाटीका

जा सांख्यमतमें अष्टाविंशति २८ तत्वको स्वरूप

भगवान् है और सांख्यमतनमें जैसी प्रकृतिपुरुष जगत्में प्रतीत नहिं होवेहैं और नित्यनिरवयव-प्रकृतिको परिणाम मानें हैं यहभी युक्तिविरुद्ध है, तासों या तरहको प्रकृतिवाद स्वभाववादमेंही गतार्थ होवेहैं॥ और दूषण भाष्यमेंही विस्तारपूर्वक लिखेहैं॥

ऐसेंही योगशास्त्रभी वोही प्रमाण है जो पुराणोक्त है॥ योग चित्तकी वृत्ति रोकवेको नाम है॥ भगवान्को ध्यान चित्त रुकें बिना नहिं हो सकेहै तासों ऐसो योग भगवद्ध्यानको साधक है तासों भक्तिको अंग है॥ जो योग भक्तिविनाहि स्वतन्त्र होयकें फल देवेवारो है वह प्रमाण नहिंहै, वाकूं लौकिक सिद्धि देयकें वृथा काल खोयवेवारो समुझनो॥ वा योगकूं पुराणादिकन्मेंभी तुच्छमान्योहै॥ ज्ञानात्मादिक योग कापालिकमतमें तथा वाममार्गमें लिखेहैं वेभी प्रामाणिक नहिं हैं॥ ऐसेही देहेंद्रियादिकन्कूं दृढ करिवेवारे जे जोग हैं उनकूंभी वृथा काल खोयवेवारे जानतेतासों अप्रामाणिक हैं॥ उनही योगनको "अनेन योगः प्रत्युक्तः" या व्याससूत्रमें खंडन कियो है॥

योग वोही प्रमाण है जामें भगवान्को ध्यान लिख्यो होय॥ जा योगमें ध्यान नहिं लिख्यो होय वाकूं केवल आत्मज्ञानको अंग समुझनो, वाकूं वाही विषयमें प्रमाण समुझनो॥९८॥

*

उपसंहार

वैराग्यज्ञानयोगश्च प्रेम्णा च तपसा तथा।।
एकेनापि दृढेनेशं भजन्सिद्धिमवाप्नुयात्।।९९।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतं स्थापयित्वा निरूपितस्य भक्त्युपयोगमाह।। वैराग्येति।।

पञ्चाङ्गयुक्तः पुरुषो भगवन्तं भजेत्।। तत्र प्रथमं वैराग्यमंगम्।। तदभावे भगवदावेशाभावान्ना भजनसिद्धिः।। द्वितीयं ज्ञानं सर्वपदार्थानां याथार्थ्यरूपं भगवतश्च।। तदभावे निश्चयाभावान्न न प्रवृत्तिः।। योगोऽप्यंगम्।। मनसश्चांचल्ये भजनानुपपत्तेः।। तथा प्रेमाप्यंगं तदभावे भजनं स्वतः पुरुषार्थरूपं न भवेत्।। रसाभिव्यक्त्य-भावात्तपोप्यंगं तदभावे देहादेरामत्वान्न भजनं सिद्ध्यति।। तपसा च देहेंद्रियादीनां पाकः।। पञ्चानां समुदायो दुर्लभ इति गौणपक्षमाह।। एकेनापीति।। दृढेनेति विशेषः।। ईशं समर्थं कृष्णम्।। सिद्धिं मोक्षम्।।९९।।

व्रजभाषाटीका

इतने ग्रंथकरिके परमतको निराकरण कियो तथा स्वमतको वेदादिकके अनुसार स्थापन कियो।। अब या मतको भक्तिमार्गमें उपयोग दिखावेंहैं।।

पांच साधनसहित होयकें पुरुषकों भगवान्को भजन करनो चाहिये।। प्रथमतो वैराग्य अर्थात् विषयभोगकी

तृष्णाकूं छोडनो चाहिये, क्योंकि जहांतांई विषयभोगकी इच्छा नहिं मिटे है तहां तांई भगवान्‌को आवेश नहिं आवेहै और भगवान्‌को आवेश आये विना भगवद्भजन नहिं सिद्ध होय ।। दूसरो साधन ज्ञान अर्थात् जापदार्थको जैसो स्वरूप है वैसोही स्वरूप वापदार्थको जानलेनों तथा भगवान्‌कोभी शास्त्ररीतिसों यथार्थस्वरूप जानलेनो याको नाम 'ज्ञान' है ।। या विना भगवद्भजनमें प्रवृत्तिहू नहिं होय ।। तीसरो साधन योग है अर्थात् चित्तके रोकवेको नाम 'योग' है ।। चित्त के रुके बिना भगवद्भजन बन नहिं सके है ।। चतुर्थ साधन प्रेम है ।। प्रेम विना भगवद्भजनमें रस नहिं प्रकट होवेंहै, रस आयेविना भगवद्भजनकूं मुख्य फलरूप नहिं मानेहैं तहाँतांई और फलकी कामना करिके करी गई भक्ति स्वतः पुरुषार्थरूप स्वतन्त्र कहावे है ।। भगवद्भजनको तप पांचवों साधन है ।। तप विना देहेंद्रियादिक कच्चे रहेंहैं ।। तप करकेंही देह- इंद्रिय आदि पक जावेंहैं ।। जब देहेंद्रियादिक पक्के होंय तबहि भगवद्भक्ति बनसकेहै ।

परन्तु इन पांचसाधनन्‌को सिद्ध होनो बहुत दुर्लभ है । तासों मुख्यरीतिसों भजन नहिं बनसकें तो गौण रीति सोंही करनो ।। इन कहे पांचसाधनन्‌मेंसों एक साधनकूँभी दृढ करिकें वासों सर्वसमर्थ श्रीकृष्णको भजन कियोजाय तो मोक्ष होवेहै ।।९९ ।।

ज्ञाने लयप्रकारा हि जगतो बहुधोदिताः ।।
मनसः शुद्धिसिद्ध्यर्थमेकः सांख्यानुलोमतः ।।१००।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवमुत्पत्तिप्रकारेण परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतं स्थापयित्वा काल-द्रव्य-गुणैःत्रेधैव प्रलयः इति प्रलयप्रकारेणापि परमतं निराकर्तुम आह।। ज्ञाने लयप्रकारा हिति।।

साद्धपद्यत्रयेणान्वयः ।। ज्ञानमार्गे जगतो लयप्रकारा बहव उक्ता इति ।। ते सर्वे प्रकरणाभावान्मनसः शुद्ध्यर्थं ज्ञेयाः ।। यतस्त्रिविध एवं संक्रमः कालेन नित्यः ।। द्रव्येण संकर्षणमुखाग्निना नैमित्तिकः ।। गुणैः प्राकृतिकः ।। तएव प्रकारांतरमापन्ना भावनया साधिता आत्यंतिकशब्दवाच्या भवंति।। न चात्यंतिकोऽतिरिक्तः ।। अहंता-ममतानाशएव विषयाणां नाशोपचारात्ततोऽतिरिक्तकल्पनायां प्रमाणाभावः ।। भावनया फलं भवतीति तदाह।। मनसः शुद्धि सिद्ध्यर्थम् इति एकः साङ्ख्यानुलोमतः इति।। "अन्ने प्रलीयते मर्त्यः" इत्यादिना निरूपितः ।।१००।।

व्रजभाषाटीका

कितनेक मनुष्य "ज्ञानसों जगत्को लय होवे है" या रीतिके अनेक वाक्य सुनकें जगत्कूं अज्ञानरूप मान लेवें हैं या संदेहकूं दूर करिवे के लिये लयको स्वरूप दिखावेंहैं।।

चित्त शुद्ध होयवेके लिये शास्त्रमें जगत्के लय होयवेके बहुत प्रकार कहेहैं।। मुख्य तीन प्रकार हैं।। एक नित्यप्रलय जासों कहेंहैं।। कालकरिके नित्य- नित्य सर्वपदार्थन्को लय होवेहै, जैसें दियाकी ज्योतिको ऊपरसों लय होतोजावें है

और भीतरसों दूसरी निकसतीजावेहै, देखिवेवारेकूं एकही ज्योति प्रतीत होवेहै॥ ऐसेंही सबपदार्थको नित्यही प्रलय होवेहै॥ अस्मदादिकन्कूं प्रतीत नहिं होवेहै॥ दूसरो नैमित्तिक प्रलय है॥ यह प्रलय द्रव्य करके होवेहै, जैसे दंड की प्रहारसों घडाको लय होजावेहै, ऐसें शेषजीके मुखकी अग्निसों जगत्को लय होजावेंहै॥ तीसरो प्राकृतिक प्रलय है॥ यह प्रलय गुणन् करके होवेहै॥ ब्रह्माकी आयुष्य पूरी भयेंसों सब सृष्टिको लय होवेहै ता समयमें क्षोभित गुणन्को भी नाश होजावेहै॥ इन प्रलयन्कूं भावना करिके सिद्धकर लेनो यहही आत्यंतिक प्रलयहै॥ यद्यपि भावना करिके करे भये प्रलयमें जगत्के पदार्थन्को नाश नहिं होवेहै परन्तु भावना करिके उन पदार्थन्को प्रलय भयो समुझवेंसो अहंता-ममताको नाश होजावे है वाहीसों विषयन्को नाश अथवा आत्यंतिक प्रलय कहेंहैं॥ इन तीन प्रकार विना केवल ज्ञानकरके जगत्को नाश माननों प्रमाण विरुद्ध है और वैसी कल्पनासों कछु फलभी नहिं होवेहै॥

एक साङ्ख्य शास्त्रोक्त लयकी भावना करिवेको प्रकार एकादशस्कंधके चतर्विंशाध्यायमें लिखोहै, वहाँ अन्न में शरीरके लयकी भावना अन्नको धानामें लय, धानाको भूमिमें, भूमिको गंधमें, गन्धको जलमें, जलको रसमें, रसको ज्योतिमें,ज्योतिको रूपमें, रूपको वायुमें, वायुको स्पर्श में, स्पर्श को आकाश में, या प्रकार परमेश्वरमें सब

पदार्थन्के प्रलयकी भावना लिखी है।। आगेके श्लोकमें "एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिकको भ्रमः, मनसो हृदि तिष्ठेत" अर्थ-ऐसी भावना करिवेवारे-के हृदयमें आत्माध्यासरूप अहंकारात्मक भ्रम नहिं रहे है यह ही फल लिखोहै।। देहनाश या जगत्को नाश होनो फलनहिं लिख्योहै।। ऐसो ही होयतो भावना करिवेवारे को वाही समय देहनाश होजानों चाहिये।। प्राकृतिक प्रलयकी भावनाको नाम प्राकृतिक आत्यन्तिक लय है।। नित्यप्रलयकी भावनाको नाम नित्य आत्यंतिक लय है।। नैमित्तिक प्रलय की भावनाको नाम नैमित्तिक आत्यन्तिक लय है।।१००।।

इंद्रियाणां देवतात्वं भावनाप्रापणे तथा।।
गोविंदासन्यसेवातः प्रापणं नान्यथा भवेत्।।१०१।।

तत्वदीपनिबन्धः

प्रकारान्तरमाह।। इन्द्रियाणामिति।।

"वाचमग्नौ सवक्तव्यम्" इत्यादिना प्रापणेन तदंशमात्रस्यलयो भिन्नो भवतीति तत्प्रकारमाह।। गोविंदासन्यसेवातः इति।। अयं लयो रूपांतरापादकः कार्यरूपः।। उत्पत्तिरेव न लयः इति भावः।।१०१।।

व्रजभाषाटीका

लयभावनाको एकप्रकार सप्तमस्कंधमें लिख्यो है। तहां वाक्यनूसहित वाणीको अग्निमें न्यास करनो शिल्पसहित हस्तको इन्द्रमें न्यास करनो कह्योहै।। या रीतिसों इन्द्रियन्को

तत्वन्को लय दिखायो है सो भी यतिधर्ममें वैराग्य होयवेके लिये दिखायो है कछु वहाँ सृष्टिप्रकरण नहिं है॥ पहिलो या ग्रंथमें देह-सङ्घात के लयको प्रकार दिखायोहै वहभी लय मनकी भावनामात्रसों नहिं होयहै किंतु आसन्यकी अथवा गोविन्दकी सेवा करिके इन्द्रियन्में देवभाव होवे तब देवांशको लय होय तब देहको लय होव हैं॥ यह लय रूपांतर अर्थात् दूसरेरूपकूं सिद्धकर देवेवारो है॥१०१॥

अद्वयात्मदृढज्ञानाद्वैराग्यं गृहमोचकम्॥
वागादिविलयाः सर्वे तदर्थं मन आदिषु॥१०२॥

तत्वदीपप्रकाशः

प्रकारांतरमाह अद्वय इति॥

"वाचं जुहाव मनसि "इत्यादिनां संङ्घातस्य लयभावनयाऽद्वयात्मदृढज्ञानं भवति, तस्य वैराग्यहेतुत्वं रागाभावस्य च संन्यासोपयोगः॥ अतएव न कारणे लयः उक्तः॥१०२॥

व्रजभाषाटीका

जैसें कीडा भृङ्गीकी भावना करते-करते भृङ्गी होवेहै या न्यायसों भावना सों करके पहिले रूपको तो त्याग नहिंहोय अरु वाहीपदार्थको और रूप होजाय- यह उत्पत्तिकोही प्रकार है, यह लय नहिं है॥ ऐसें ही राजा युधिष्ठिरने भी संघातके लयकी भावना करीहै तहाँ वाणी मन प्राण आदि नव अग्निमें नव आहुतिनकरिके कल्पनामात्रसों होम कियो॥ या होममें अपनें नियामकन्में होमकी भावना करीजावेहै,

जैसें वाणीको होम मनमें कियोजावेहै, क्योंकि वाणी मनके आधीन है।। मनको होम प्राणमें कियो जावेंहै, क्योंकि "प्राणबंधनं हि सौम्य मनः" या श्रुतिमें मनकूं प्राणके आधीन लिख्योहै।। इत्यादि प्रकारकोभी अद्वयज्ञान दृढ होवैहै वासों वैराग्यको संन्यासमें उपयोग है।। राजाने संन्यास-सिद्धिकेलियेही ऐसी भावना करी हती यासों यह निश्चय भयो।।१०२।।

भावनामात्रतो भाव्या न हि सर्वात्मना लयः।।
मनोमात्रत्वकथनं तदर्थं जगतः क्वचित्।।१०३।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं लयत्रयमुक्त्वा प्रकृतोपयोगमाह।। भावानामात्रतः इति।। सर्वात्मना कालादिनेव न लयः।। "देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा" इतिवाक्यानां बाधकत्वमाशंक्य तेषामपि वैराग्योपयोगित्व-मित्याह।। मनोमात्रत्वकथनमिति।।१०३।।

व्रजभाषाटीका

जितने लयके प्रकार हैं भावनामात्र करिके भाव्य हैं। देहादिकन्को लय करिवेवारे नहिं हैं।। ऐसेंही जहाँ देहादिकन्कूं मनोमात्रता लिखी है वहांभी वैराग्य होयवे के लियेही लिखी है।। वैसें भिक्षुगीतामें वैराग्यप्रकरणमें "देहं मनोमात्र मिमम्" या श्लोकमें लिखी है।।१०३।।

भक्तिमार्गानुसारेण मतांतरगता नराः।।

भजंति बोधयंत्येवमविरुद्धं न बाध्यते ॥
नैकांतिकं फलं तेषां विरुद्धाचरणात्क्वचित् ॥१०४॥

तत्वदीपप्रकाशः

एवं मतांतराणि निराकृत्य तेषां फलाभावं वक्तुं येन केनापि मार्गेण भगवद्भजनं चेत्फलाय भवेत्तदा नैकांततः स्वमतं साधकं भवतीति मार्गांतरवर्तिनां भगवद्भजनेऽपि फलाभावमाह ॥ भक्तिमार्गानु-सारेणेति सार्द्धेन ॥ नहि मायावादिमते श्रीकृष्णादिर्व्यवहार्य-त्वाद्ब्रह्म भवितुमर्हति ॥ सदानंदसंवित्स्वरूपमिति चाहुः ॥ अतः स्वमते यथा तथा पदार्थसिद्ध्यभावाद्भक्तिमार्गानुसारेणैव वदंतीति ज्ञातव्यम् ॥ तदा तेषां प्रतितंत्रन्यायेनाभ्युपगमसिद्धांतो भवति ॥ तावता तेषां फलं भविष्यतीत्याशंक्याह ॥ नैकांतिकमिति ॥ कस्यचिद्भक्तेरेवातिशये नाममात्रेण मायावादित्वे बिल्वमंगला-दीनामिव मोक्षो भवेदपि न तु स्वमतपक्षपातेऽतो नैकांतिकं फलं हेतुः ॥ विरुद्धाचरणादिति ॥ भगवति कदाचिदन्यथाभावनया स्वाज्ञानकल्पित्वादिना ॥१०४॥

व्रजभाषाटीका

ऐसें मतांतरको निराकरण करकें भक्तिमार्गकी रीतिसों भगवद्भजन करेंहैं उनकूंही फल मिलेहै। औरमार्गवर्ती होयकें भजन करे तो फल नहिं होय है यह आज्ञा करें हैं ॥ "भक्तिमार्गानुसारेण इति" मायावादादि मतमें ब्रह्मकूं व्यवहारके योग्य नही माने हैं और श्रीकृष्णकूं व्यवहार के योग्य माने है तासों उनकी रीतिसों श्रीकृष्ण ब्रह्मही नहिं होय सकेंहैं ॥

कदाचित् कहोगे उनके मतमें सदानंदज्ञानकूं ब्रह्म कहेंहैं ॥ अपने मतमें तथा उनके मतमें पदार्थसिद्धि न्यारी- न्यारी है,

तो वेभी भक्तिमार्गानुसारही कहि रहे हैं ऐसेही जानना चाहिये, क्योंकि जा शास्त्रको जो अंगीकार कर लेवें है वो पुरुष वा शास्त्रके मतकूंही अपनो मुख्य सिद्धांत मानेंहै और 'अंधहस्ति' न्याय करिकें एक- एक शास्त्र ईश्वरके एक देशके प्रतिपादन करिवेवारे हैं तासों वा मत करिकें फलभी अवश्य होयगो ॥

तहां उत्तर देतहैं ॥ मायावादीके मतमें मोक्ष कोई पुरुषको होयभी जाय तोभी मायावाद भगवद्भजनको साधक नहिं होसकेहै, जैसें बिल्वमंगल जो पूर्वावस्थामें विरुद्धाचरण वालेभी हते परन्तु पीछें प्रबल भक्ति करिकें मोक्षकों प्राप्तभये ऐसें प्रबलभक्ति होय तो नाम मात्रको मायावादीभी होय तोभी मोक्ष होजाय॥ यदि मायावादको पक्षपात नहिं करें तो, क्योंकि मायावादकी रीतिसों भगवान्‌में विपरीतभावना करिकें अज्ञानकी कल्पित बुद्धि होजाय तो भक्ति सर्वथा सिद्ध नहिं होय, यासों मायावादादि मतमें भक्ति विरुद्धाचार होयवेंसों फलप्राप्तिको निश्चय नहिं होय सके है यह बात सिद्धभई ॥१०४॥

एवं सर्वं ततः सर्वं स इति ज्ञानयोगतः ॥
यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिरुत्तमः ॥१०५॥

तत्वदीपप्रकाशः

एवं परमतं निराकृत्य, स्वमते यथा भजनं तथा सङ्कलीकृत्याह ॥ एवं सर्वमति ॥

एवं सर्वं निश्चित्य सर्वं भगवतएव सएव च सर्वमिति वैदिक-गौणमुख्यज्ञानयुक्तः प्रेम्णा श्रवणादिप्रकारेण यः भजते स भक्तिमार्गे उत्तमः ॥१०५॥

व्रजभाषाटीका

श्री आचार्यजी आज्ञा करेंहैं जो या ग्रंथमें ज्ञान वर्णन कियो ताको निश्चय करिकें अर्थात् सब जगत् भगवान्सों ही प्रकट भयो है और भगवान्ही सर्वरूप हैं ऐसें गौण मुख्य भाव सों भगवान्को माहात्म्य जानिकें चित्तके वैराग्यकेद्वारा विषयभोगकी आसक्ति छोडिकें योगकेद्वारा चित्तकों एकाग्र करिकें तपश्चर्याकि द्वारा देहेंद्रियादिकनकूं पक्के करिके उत्कट प्रेमकरकें प्रकटभयो जो रस वा रसके बढवेसों भक्तिकोही परमपुरुषार्थरूप मानकें श्रवण कीर्तनस्मरण पादसेवन अर्चन वंदन दास्य सख्य आत्मसमर्पणरूप नवप्रकार करकें भगवान्को भजन करे है वो उत्तमाधिकारी है ॥१०५॥

प्रेमाभावे मध्यमः स्याज्ज्ञानाभावे तथादिमः ॥
उभयोरप्यभावे तु पापानाशस्ततो भवेत् ॥१०६॥

तत्वदीपप्रकाशः

शास्त्रार्थज्ञानाभावेऽपि प्रेम्णा भजने मध्यमः॥ प्रेमाभावे मध्यमः इति वा। ज्ञानाभावे तथा मध्यमः इत्यर्थः॥ आदिमो वा॥ उभयो अभावे श्रवणादीनां पापनाशकत्वं धर्मत्वं वा, नतु भक्तिमार्गः इत्यर्थः ॥१०६॥

व्रजभाषाटीका

जो मनुष्य शास्त्रके द्वारा भगवान्के माहात्म्यकूं तो नहिं

जानतो होय परन्तु उत्कट प्रेमकरिकें श्रवण कीर्तनादि नवभक्तिकरिकें भगवत्सेवा करतो होय वाकूँ मध्यमाधिकारी कहनो, क्योंकि माहात्म्य जानिकें वाको प्रेम नहिं भयो है, पूर्वसंस्कारवशसों प्रेम भयो है तासों वो प्रेम गौण है॥ जो पुरुष शास्त्रके द्वारा भगवान्के माहात्म्यकूं जानके प्रेमविना श्रवणादि नवप्रकारन्के द्वारा भगवद्भजन करेहै वामें मुख्य अंग प्रेमके नहिं होयवेंसों वाकूंभी मध्यमाधिकारी कहनों॥ जो पुरुष शास्त्रद्वारा भगवन्माहात्म्यकूँभी नहिं जानेंहैं जामें सबसों अधिक उत्कट प्रेमभी नहिं है, साधारण प्रेम करिके श्रवणादि नवप्रकारसों भगवद्भजन करेहै वाकूं 'आदिम' अर्थात् हीनाधिकारी कहनों॥ जो पुरुष ज्ञानवारो भी नहिं होय और प्रेमवारोभी नहिं होय केवल श्रवणादि नव प्रकारन्सों भगवद्भजन करतो होय वा पुरुषको पापनाशमात्र होय है, क्योंकि श्रवणादिकन्कूं पापनाशकता भागवत द्वितीय स्कंधमें "लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषम्" या श्लोकमें लिखी है॥ अथवा प्रेमज्ञानविना श्रवणादिककूं चांद्रायणादिकनके समानधर्मरूप समुझनो परंतु माहात्म्यज्ञान पूर्वक स्नेहरहित हैं तासों भक्तिमार्गीय वे नहिं होय सकें हैं॥१०६॥

तपोवैराग्ययोगे तु ज्ञानं तस्य फलिष्यति॥
योगयोगे तथा प्रेम स्तुतिमात्रं ततोऽन्यथा॥१०७॥

तत्वदीपप्रकाशः

तपोवैराग्यसहितंचेत् श्रवणादिकं भवेद्अन्यतरसहितं वा, तदा जन्मांतरे ज्ञानं भविष्यतीति ज्ञातव्यम्॥ "बहूनां जन्मनामन्ते" इति वाक्यात्॥ योगसहितभजने प्रेम॥ प्रथमस्य मध्यमत्वं मध्यमस्योत्तमत्वमिति क्रमः॥ मार्गाङ्गभावे केवलश्रवणादीनां यत्परमपुरुषार्थसाधकत्वं निरूप्यते तद्भगवतः स्तोत्रनिरूपणं धन्योहमित्यादिवत्॥ प्रमेयबलेन तेषां सिद्धिर्भवति चेद्भवतु नान्यथेत्यर्थः॥१०७॥

व्रजभाषाटीका

जो पुरुष तप-वैराग्य सहित होयकें श्रवणादि नव प्रकार सों भगवद्भजन करेहै अथवा केवल तप सहित होयकें अथवा केवल वैराग्यसहित होयकें श्रवणादि नव प्रकारसों भगवद्भजन करेंहै वाके किये भये श्रवणादिकनकूं ज्ञानमार्गीय समुझनो, विन श्रवणादिकन्सों जन्मांतरमें ज्ञान प्राप्ति होवेहै॥

जो पुरुष योगद्वारा चित्तकूँ एकाग्र करिकें केवल योगसहित होयकें श्रवणादिक नव भक्ति करें है वाके किये भये श्रवणादिक भक्तिमार्गीय हैं तासों विन श्रवणादिकन्सों प्रेम प्रकट होवें है॥ साधन करतें करतें प्रथमाधिकारी हे सो मध्यमाधिकारी हो जावेहै, मध्यमाधिकारी साधन करतें-करतें उत्तमाधिकारी होयजावेंहैं॥

ज्ञानमार्गकी रीतिसों अथवा भक्तिमार्गके अनुसार करेभयेही श्रवणादिक भगवत्प्राप्ति साधक हैं॥ ज्ञान मार्ग अथवा भक्तिमार्ग विना तथा तप- वैराग्य- ज्ञान- प्रेम योगरूप

पांच साधन विना केवल श्रवणादिककूँ जो परमपुरुषार्थसाधक कहे हें वो भगवान् की स्तुति मात्र है । अर्थात् "कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्" इत्यादि वाक्यन्कूँ भगवान्की स्तुति करिवेवारे जानने। जैसे कोई पुरुषके घर कोई महात्मा पधारे तब वो कहेहै "मैं धन्य हूँ, मेरे घर आप पधारे" ऐसें वाको कहनो महात्माकी स्तुति करनोंही केवल समुझो जावें है, ऐसेंही केवल श्रवणादिकन्कूं पुरुषार्थसाधक बतायकें भगवान्की स्तुति करीहै । अर्थात् भगवान् बडे कृपालु हैं, साधन विना केवल श्रवणादिकसों ही पुरुषार्थसिद्धि करिदेत हैं इत्यादि ।। तात्पर्य यह है कि कभी भगवान् अपनें प्रमेयबलसों पंच साधन रहित केवल श्रवण-कीर्तनादिकन् सोंभी सिद्धि देतहैं, जैसे अजामिलकूं भगवत्प्राप्ति भई परन्तु शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार तो ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्गकी रीतिसों पञ्चांगसहित अथवा पांचन्मेंसों कोई एक दृढ अंग सहित हि श्रवणादिक भगवत्प्राप्ति करवेवारे हैं यहही सिद्धांत सिद्ध होवेहै ॥१०७॥

अर्थोयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यैः
रामायणैः सहितभारतपञ्चरात्रैः ।।
अन्यैश्च शास्त्रवचनैः सह तत्त्वसूत्रैः
निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव ।। १०८ ।।

इति श्रीकृष्णव्यासविष्णुस्वामिमतवर्तिश्रीवल्लभाचार्य-
विरचिते तत्त्वार्थदीप निबन्धे शास्त्रार्थकथनं नाम प्रथमं प्रकरणं संपूर्णम्।।

तत्वदीपप्रकाशः

एवं शास्त्रार्थमुक्त्वोपसंहरति।। अर्थोऽयमेवइति।।

सर्वेषां प्रमाणानामत्रैकवाक्यता।। अन्येषु वाक्याभासा एव।। रामायणानां बहुत्वं सर्वकल्पेष्वप्येवमेव प्रतिपादयंतीति ज्ञापनार्थम्।। भारत पंचरात्रयोः रामायणशेषत्वं चरित्रप्रतिपादकत्वाविशेषात्।। अन्यानि शास्त्राणि पुराणरूपाणि।। तच्छेषत्वं भारतादेः।। तत्त्वसूत्राणि चतुर्लक्षणी मीमांसा।। तैः सर्वैरपि ज्ञानं प्रेमसहितं कर्तव्यमिति निर्णीयते।। अन्यथा चतुर्दशविद्यानां सरस्वतीरूपत्वादेकानिष्ठता न स्यात्।। तत्रापि सहृदयम्।। भावोऽपि तस्या एकत्रैवेति।। अयमर्थः सरस्वतीभर्त्रैव ज्ञायत इति हरिणेत्युक्तम्।। कदाचिदन्यथा केचिद्वक्ष्यंतीति तन्निराकरणार्थं 'सदा'इति।।१०८।।

श्लोकार्थ : सभी वेदवाक्य, महाभारत, पञ्चरात्र, आगम, रामायण तथा ब्रह्मसूत्र सहित अन्य शास्त्रके वचनन्में ये ही ब्रह्मवादको प्रतिपादन भयो हे, ये ही सिद्धान्त कह्यो गयो हे ।। भगवान् श्रीहरिने गीतामें या ही सिद्धान्तको सर्वकालिक सत्यके रूपमें निर्धारण कियो हे तथा उनको तात्पर्य भी या ही सिद्धांत में हे।

श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करे हें के मुख्य सिद्धान्त ये ही हे, यामें सब प्रमाणन्की एकवाक्यता हे, अर्थात् समस्त वेदवाक्य, रामायण, तदङ्गभूत भारत-पञ्चरात्र तथा समस्त पुराण-व्याससूत्र इन सब प्रमाणन् करिकें प्रेम सहित ज्ञान सिद्ध करनो ये ही निर्णय होवे हे।। अन्य रीतिसों निर्णय कियो जाय तो चतुर्दशविद्यारूप सरस्वतीकी एकनिष्ठता

कभी नहिं होय सके हे।। तहां भी सरस्वतीको हृदय सहित भाव निजपति एक भगवान्में ही हे तासों पतिव्रताके अभिप्रायकुं जेसें पति विना अन्य कोउ नहिं जान सके हे एसें सरस्वतीके या प्रकारके अभिप्रायकुं सरस्वतिके भर्ता श्रीहरि ही जानें हे।। ये एकादश स्कन्धमें भगवान्नें आज्ञा करी हे। "इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन"।

अर्थ : या सरस्वतीके हृदयके अभिप्राय कुं मेरे विना अन्य कोउ नहिं जाने हे ।। तासों आगे होयवे वारे विद्वान् या सिद्धान्तसों विरुद्ध कहें तो सर्वथा नहिं माननो।। सदा सर्वदा याहीकुं मुख्य सिद्धान्त समुझनो।।१०८।।

प्रमाणबलमाश्रित्य शास्त्रार्थो विनिरूपितः।।
प्रमेयबलमाश्रित्य सर्वनिर्णय उच्यते ।।

इति श्रीतत्त्वदीपनिबंधटीकायां प्रकाशाख्यायां
श्रीवल्लभाचार्यविरचितायां प्रथमं शास्त्रार्थप्रकरणं संपूर्णम्।।१।।
।। श्री गोवर्द्धननाथो विजयते।।

